चन्द्रगुप्त

जयशङ्कर 'प्रसाद'

चन्द्रगुप्त

(ऐतिहासिक नाटक)

जयशंकर प्रसाद



प्रसाद मंदिर :: गोवर्द्धनसराय :: वाराणसी

लेखक
श्री जयशङ्कर 'प्रसाद'



सम्पादक
श्री रत्नशङ्कर प्रसाद



प्रकाशक
प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मंदिर
गोवर्द्धनसराय-वाराणसी



सर्वप्रथम
१९३१ ई० में प्रकाशित



प्रसाद मंदिर संस्करण
जुलाई १९८१ ई०



मूल्य : आठ रुपये मात्र

लीडर प्रेस, इलाहाबाद में मुद्रित

Historical play by Sri Jayshankar 'Prasad'



आविर्भाव : माघ शुक्ला दशमी विक्रम संवत् १९४६
तिरोभाव : कार्त्तिक शुक्ला एकादशी संवत् १९९४

काशी के उत्तर-कीर्ति, श्री, विद्या और विनय से संपन्न भक्ति-प्रधान सुँघनीसाहु के माहेश्वर कुल में साहु देवी प्रसाद के कनिष्ठ आत्मज के रूप में श्री जयशङ्कर 'प्रसाद' का जन्म हुआ था। उन्होंने स्थानीय क्वींस कालेज में छठवीं कक्षा तक अध्ययन किया। उसके बाद हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत के परंपराप्राप्त विद्वानों से घर पर हीं काव्य और साहित्य की ठोस प्रारंभिक शिक्षा पाई। बाल्यावस्था से ही कवियों और मनीषियों के आत्मीय सत्संग

से उनकी नैसर्गिक प्रतिभा विकसित हो चली। किशोरावस्था में ही कविता उनके कंठ से फूट चली और अपनी त्रयपुरुषी व्यावसायिक गद्दी—**नारियल बाजारवाली सुंघनीसाहु की दूकान** पर अविदित भाव से उन्होंने चुपचाप अपनी काव्य-साधना को अग्रसर किया। विक्रमीय संवत् १९६३ में 'भारतेंदु' में पहली बार उनकी रचना प्रकाशित हुई। इसी वर्ष उन्होंने 'उर्वशी चंपू' एवं 'प्रेमराज्य' के प्रणयन किये जिनका प्रकाशन विक्रमीय संवत् १९६६ में हुआ। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में नये-नये उन्मेष लेकर 'इंदु' के माध्यम से उनकी कवितायें, कहानियाँ, नाटक और निबंध प्रकाशित होने लगे। अगस्त १९१० के 'इंदु' (कला १ किरण २ भाद्र १९६७) में 'ग्राम' नाम की उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई। हिंदी में कथा साहित्य के एक नये युग की स्थापना हुई। काव्य की नवीन शैली के सर्वश्रेष्ठ कवि ही नहीं उन्हें उसका प्रजापति कहा जा सकता है। हिंदी के महिमामंडित सर्वश्रेष्ठ नाटककार और मौलिक कहानीकार के रूप में साहित्य को उनकी देन अमर है।

उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनकी लेखनी के पारस ने हिंदी साहित्य के जिस विषय को जहाँ भी स्पर्श किया वह मिट्टी से सोना बन गया। भारतीय जीवन-दर्शन और चिंतन की परंपरा में वे मानवता के उज्ज्वल भविष्य और लोकमंगल-मूलक आदर्शों के क्रांतदर्शी-स्वप्नद्रष्टा और अग्रदूत थे। हिंदी साहित्य में प्रसादजी की लेखनी के द्वारा आस्था और आत्मवाद के जिस नये युग का प्रवर्त्तन हुआ छायावाद उसी की एक सुषमाभिव्यक्ति है। कविकुल-गुरु कालिदास और भवभूति दोनों को मिला कर यदि व्यक्तित्व की कोई मूर्त्ति खड़ी की जा सके तो वह प्रसाद की उपमा बन सकती है। उनके ढाई उपन्यासों तथा खोज-पूर्ण निबंधों का हिंदी जगत् में बड़ा ऊँचा स्थान है जहाँ उनके चिंतन की प्रचुर सामग्री मिलती है। उन्होंने हिंदी जगत् को जो मणिकांचनमय विचार दिये हैं। उनका समुचित मूल्यांकन—आने वाली शताब्दियों का दायित्व होगा।

—**अंतेवासी**

प्रिय सुहृद्वर
राय कृष्णदास
को
प्रीति-उपहार

अंगण-वेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम् ।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृत-प्रतिज्ञस्य वीरस्य ॥

—हर्षचरित्रम्

मौर्य्य वंश

प्राचीन आर्य्य नृपतिगण का साम्राज्य उस समय नहीं रह गया था। चंद्र और सूर्यवंशों की राजधानियाँ—अयोध्या और हस्तिनापुर, विकृत रूप में भारत के वक्षस्थल पर अपने साधारण अस्तित्व का परिचय दे रही थीं। अन्य प्रचंड बर्बर जातियों की लगातार चढ़ाइयों से पवित्र सप्तसिंधु प्रदेश में आर्य्यों के साम-गान का पवित्र स्वर मंद हो गया था। पांचालों की लीला-भूमि तथा पंजाब मिश्रित जातियों से भर गया था। जाति, समाज और धर्म—सब में एक विचित्र मिश्रण और परिवर्तन-सा हो रहा था। कहीं आभीर और कहीं ब्राह्मण, राजा बन बैठे थे। यह सब भारत-भूमि की भावी दुर्दशा की सूचना क्यों थी? इसका उत्तर केवल यही आपको मिलेगा, कि—धर्म-संबंधी महापरिवर्त्तन होने वाला था—वह बुद्ध से प्रचारित होने वाले बौद्ध धर्म की ओर भारतीय आर्य्य लोगों का झुकाव था, जिसके लिए वे लोग प्रस्तुत हो रहे थे।

उस धर्मबीज को ग्रहण करने के लिए कपिल, कणाद आदि ने आर्य्यों का हृदय-क्षेत्र पहले से ही उर्वर कर दिया था, किंतु यह मत सर्वसाधारण में अभी नहीं फैला था। वैदिक कर्मकांड की जटिलता से उपनिषद् तथा सांख्य आदि शास्त्र आर्य्य लोगों को सरल और सुगम प्रतीत होने लगे थे। ऐसे ही समय पार्श्व नाथ ने एक जीव-दयामय धर्म प्रचारित किया और वह धर्म बिना किसी शास्त्र-विशेष के, वेद तथा प्रमाण की उपेक्षा करते हुए फैलकर शीघ्रता के साथ सर्व-साधारण से सम्मान पाने लगा। आर्य्यों की राजसूय और अश्वमेध आदि शक्ति बढ़ाने वाली कियायें शून्य-स्थान में ध्यान और चिंतन के रूप में परिर्वत्तित हो गई; अहिंसा का प्रचार हुआ। इससे भारत की उत्तरी सीमा में स्थित जातियों को भारत में आकर उपनिवेश स्थापित करने का उत्साह हुआ। दार्शनिक मतों के प्रबल प्रचार से भारत में धर्म, समाज ओर साम्राज्य—सबमें विचित्र और अनिवार्य परिवर्त्तन हो रहा था। बुद्धदेव के दो-तीन शताब्दी पहले ही दार्शनिक मतों ने, उन विशेष बंधनों को, जो उस समय के आर्य्यों को उद्विग्न कर रहे थे, तोड़ना आरंभ किया। उस समय ब्राह्मण वल्कलधारी होकर काननों में रहना ही अच्छा न समझते; वरन् वे भी राज्यलोलुप होकर स्वतंत्र छोटे-छोटे राज्यों के अधिकारी बन बैठे। क्षत्रियगण राजदंड को बहुत भारी तथा अस्त्र-शस्त्रों को हिंसक समझ

कर उनकी जगह जप-चक्र हाथ में रखने लगे। वैश्य लोग भी व्यापार आदि में मनोयोग न देकर धर्माचार्य की पदवी को सरल समझने लगे। और तो क्या, भारत के प्राचीन दास भी अन्य देशों से आयी हुई जातियों के साथ मिलकर दस्यु-वृत्ति करने लगे।

वैदिक धर्म पर क्रमशः बहुत-से आघात हुए, जिनसे वह जर्ज्जर हो गया। कहा जाता है कि उस समय धर्म की रक्षा करने में तत्पर ब्राह्मणों ने अर्बुदगिरि पर एक महान् यज्ञ करना आरंभ किया और उस यज्ञ का प्रधान उद्देश्य वर्णाश्रम-धर्म तथा वेद की रक्षा करना था। चारों ओर से दल-के-दल क्षत्रियगण —जिनका युद्ध ही आमोद था—जुटने लगे और वे ब्राह्मण-धर्म को मानकर अपने आचार्यों को पूर्ववत् सम्मानित करने लगे। जिन जातियों को अपने कुल की क्रमागत वंश-मर्यादा भूल गयी थी, वे तपस्वी और पवित्र ब्राह्मणों के यज्ञ से संस्कृत होकर चार जातियों में विभाजित हुईं। इनका नाम अग्निकुल हुआ। संभवतः इसी समय में तक्षक या नागवंशी भी क्षत्रियों की एक श्रेणी में गिने जाने लगे।

यह धर्म-क्रांति भारतवर्ष में उस समय हुई थी, जब जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए, जिनका समय ईसा से ८०० वर्ष पहले माना जाता है। जैन लोगों के मत से भी इस समय में विशेष अंतर नहीं है। ईसा के आठ सौ वर्ष पूर्व यह बड़ी घटना भारतवर्ष में हुई, जिसने भारतवर्ष में राजपूत जाति बनाने में बड़ी सहायता दी और समय-समय पर उन्हीं राजपूत क्षत्रियों ने बड़े-बड़े कार्य किये। उन राजपूतों की चार जातियों में प्रमुख परमार जाति थी और जहाँ तक इतिहास पता देता है—उन लोगों ने भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में फैलकर नवीन जनपद और अक्षय कीर्त्ति उपार्जित की। धीरे-धीरे भारत के श्रेष्ठ राजवर्गों में इनकी गणना होने लगी। यद्यपि इस कुल की भिन्न-भिन्न पैंतीस शाखायें हैं; पर सब में प्रधान और लोक-विश्रुत मौर्य्य नाम की शाखा हुई। भारत का शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं है, पर बौद्धों के बहुत-से शासन संबंधी लेख और उनकी धर्म-पुस्तकों से हमें बहुत सहायता मिलेगी, क्योंकि उस धर्म को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वाला उसी मौर्य्य-वंश का सम्राट् अशोक हुआ है। बौद्धों के विवरण से ज्ञात होता है, कि शैशुनाक-वंशी महानंद के संकर-पुत्र महापद्म के पुत्र धननंद से मगध

का सिंहासन लेनेवाला चंद्रगुप्त मोरियों के नगर का राजकुमार था। यह मोरियों का नगर पिप्पिली-कानन था, और पिप्पिली-कानन के मौर्य्यनृपति लोग भी बुद्ध के शरीर-भस्म के भाग लेनेवालों में एक थे।

मौर्य्य लोगों की उस समय भारत में कोई दूसरी राजधानी न थी। यद्यपि इस बात का पता नहीं चलता है कि इस वंश के आदिपुरुषों में से किसने पिप्पिली-कानन में मौर्यों की पहली राजधानी स्थापित की; पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ईसा से ५०० वर्ष या इससे पहले यह राजधानी स्थापित हुई और मौर्य्य-जाति इतिहास-प्रसिद्ध कोई ऐसा कार्य तब तक नहीं कर सकी, जब तक प्रतापी चंद्रगुप्त उसमें न उत्पन्न हुआ। उसने मौर्य्य शब्द को, जो अब तक भारतवर्ष के एक कोने में पड़ा हुआ अपना जीवन अपरिचित रूप से बिता रहा था, केवल भारत ही नहीं वरन् ग्रीस आदि समस्त देशों में परिचित करा दिया। ग्रीक इतिहास-लेखकों ने अपनी भ्रमपूर्ण लेखनी से इस चंद्रगुप्त के बारे में कुछ तुच्छ बातें लिख दी हैं, जो कि बिलकुल असंबद्ध ही नहीं वरन् उलटी हैं। जैसे—'चंद्रगुप्त नाइन के पेट से पैदा हुआ महानंदिन का लड़का था।' पर यह बात पोरस ने महापद्म और धननंद आदि के लिए कही है[१] और वही पीछे से चंद्र-गुप्त के लिए भ्रम से यूनानी ग्रंथकारों ने लिख दी है। ग्रीक-इतिहास-लेखक Plutarch लिखता है कि चंद्रगुप्त मगध-सिंहासन पर आरोहण करने के बाद कहता था कि सिकंदर महापद्म को अवश्य जीत लेता, क्योंकि यह नीच जन्मा होने के क़ारण जन-समाज में अपमानित तथा घृणित था। लिवानियस आदि लेखकों ने तो यहाँ तक भ्रम डाला है, कि पोरस ही नापित से पैदा हुआ था।

---

१. Aelxander who did not at first believe this inquired from King Porus whether this account of the power of Zandrames was true and he was told by Porus that it was true, but that the king was but of mean and obscure extraction accounted to be a barber's son; that the queen however, had fallen in love with the barber, and murdered her husband and that the kingdom had thus devolved upon Zandrames. (Diodorus Sicuiuis in History of A.S. Literature)

पोरस ने ही यह बात कही थी, इससे वही नापित-पुत्र समझा जाने लगा—तो क्या आश्चर्य है कि तक्षशिला में जब चंद्रगुप्त ने यही बात कही थी तो वही नापित-पुत्र समझा जाने लगा हो। ग्रीकों के भ्रम से ही यह कलंक उसे लगाया गया है।

एक बात और भी उस समय तक निर्धारित नहीं हुई थी कि Sandrokottus और Zandrames भिन्न-भिन्न दो व्यक्तियों के या एक के ही नाम हैं। यह H. H. Wilson ने विष्णुपुराण आदि के संपादन-समय में सैंड्रोकोटस और चंद्रगुप्त को एक में मिलाया। यूनानी लेखकों ने लिखा है कि Zandrames ने बहुत-सी सेना लेकर सिकंदर से मुकाबिला किया। उन्होंने उस प्राच्य-देश के राजा Zandrames को, जो नंद था, भूल से चंद्रगुप्त समझ लिया—जो तक्षशिला में एक बार सिकंदर से मिला और बिगड़कर लौट आया था। चंद्रगुप्त और सिकंदर की भेंट हुई थी, इसलिए भ्रम से वे लोग Sandrokottus आर Zandrames को एक समझ कर नंद की कथा को चंद्रगुप्त के पीछे जोड़ने लगे।

चंद्रगुप्त ने पिप्पिली-कानन के कोने से निकलकर पाटलिपुत्र पर अधिकार किया। मेगास्थनीज ने इस नगर का वर्णन किया है और फारस की राजधानी से बढ़कर बतलाया है। अस्तु, मौर्य्यों की दूसरी राजधानी पाटलिपुत्र हुई।

पुराणों को देखने से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त के बाद नौ राजा उसके वंश में मगध के सिंहासन पर बैठे। उनमें अंतिम राजा वृहद्रथ हुआ, जिसे मारकर पुष्यमित्र—जो शुंग-वंश का था—मगध के सिंहासन पर बैठा; किंतु चीनी यात्री हुएन्त्साँग, जो हर्षवर्धन के समय में आया था, लिखता है—"मगध का अंतिम अशोकवंशी पूर्णवर्मा हुआ, जिसके समय में शशांकगुप्त ने बोधिद्रुम को विनष्ट किया था। और उसी पूर्णवर्मा ने बहुत-से गौ के दुग्ध से उस उन्मूलित बोधिद्रुम को सींचा, जिससे वह शीघ्र ही फिर बढ़ गया।" यह बात प्रायः सब मानते हैं कि मौर्य्य-वंश के नौ राजाओं ने मगध के राज्यासन पर बैठ कर उसके अधीन के समस्त भू-भाग पर शासन किया। जब मगध के सिंहासन पर से मौर्य्यवंशियों का अधिकार जाता रहा, तब उन लोगों ने एक प्रादेशिक राजधानी को अपनी राजधानी बनाया। प्रबल प्रतापी चंद्रगुप्त का

राज्य चार प्रादेशिक शासकों से शासित होता था। अवंती, स्वर्णगिरि, तोषालि और तक्षशिला में अशोक के चार सूबेदार रहा करते थे। इनमें अवंती के सूबेदार प्रायः राजवंश के होते थे। स्वयं अशोक उज्जयिनी में सूबेदार रह चुका था। संभव है कि मगध का शासन डाँवाडोल देखकर मगध के आठवें मौर्य्य-नृपति सोमशर्मा के किसी राजकुमार ने जो कि अवंती का प्रादेशिक शासक रहा हो, अवंती को प्रधान राजनगर बना लिया हो, क्योंकि उसकी एक ही पीढ़ी के बाद मगध के सिंहासन पर शुंगवंशियों का अधिकार हो गया। यह घटना संभवतः १७५ ई० पूर्व हुई होगी, क्योंकि १८३ में सोमशर्मा मगध का राजा हुआ। भट्टियों के ग्रंथों में लिखा है कि मौर्य्य-कुल के मूलवंश से उत्पन्न हुए परमार नृपतिगण ही उस समय भारत के चक्रवर्त्ती राजा थे, और वे लोग कभी-कभी उज्जयिनी में अपनी राजधानी स्थापित करते थे।

टाड ने अपने राजस्थान में लिखा है कि जिस चंद्रगुप्त की महान् प्रतिष्ठा का वर्णन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है, उस चंद्रगुप्त का जन्म पवाँरकुल की मौर्य्य शाखा में हुआ हैं। संभव है कि विक्रम के सौ या कुछ वर्ष पहले जब मौर्य्यों की राजधानी पाटलिपुत्र से हटी, तब इन लोगों ने उज्जयिनी को प्रधानता दी और यहीं पर एक प्रादेशिक शासक की जगह राजा की तरह रहने लगे।

राजस्थान में पवाँर-कुल के मौर्य्य-नृपतिगण ने इतिहास में प्रसिद्ध बड़े-बड़े कार्य किये, किंतु ईसा की पहली शताव्दी से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक प्रायः उन्हें गुप्तवंशी तथा अपर जातियों से युद्ध करना पड़ा। भट्टियों ने लिखा है कि उस समय मौर्य्य-कुल के परमार लोग कभी उज्जयिनी को कभी राजस्थान की धारा को अपनी राजधानी बनाते थे।

इस दीर्घकालव्यापिनी अस्थिरता में मौर्य्य लोग जिस तरह अपनी प्रभुता बनाये रहे, उस तरह किसी वीर और परिश्रमी जाति के सिवा दूसरा नहीं कर सकता। इसी जाति के महेश्वर नामक राजा ने विक्रम के ६०० वर्ष बाद कार्त्त-वीर्यार्जुन की प्राचीन महिष्मती को, जो नर्मदा के तट पर थी, फिर से बसाया और उनका नाम महेश्वर रखा, उन्हीं का पौत्र दूसरा भोज हुआ। चित्रांग मौर्य्य ने भी थोड़े ही समय के अंतर में चित्रकूट (चित्तौर) का पवित्र दुर्ग बन-

वाया, जो भारत के स्मारक चिह्नों में एक अपूर्व वस्तु है।

गुप्तवंशियों ने जब अवंती मौर्य्य लोगों से ले ली, उसके बाद वीर मौर्य्यों के उद्योग से कई नगरियाँ बसाई गईं और कितनी ही उन लोगों ने दूसरे राजाओं से ले लीं। अर्बुदगिरि के प्राचीन भू-भाग पर उन्हीं का अधिकार था। उस समय राजस्थान के सब अच्छे-अच्छे नगर प्रायः मौर्य्य-राजगण के अधिकार में थे। विक्रमीय संवत् ७८० तक मौर्य्यों की प्रतिष्ठा राजस्थान में थी और उस अंतिम प्रतिष्ठा को तो भारतवासी कभी न भूलेंगे जो चित्तौरपति मौर्य्य-नरनाथ मानसिंह ने खलीफा वलीद को राजस्थान से विताड़ित करके प्राप्त की थी।

मानमौर्य्य के बनवाये हुए मानसरोवर में एक शिलालेख है, जिसमें लिखा है कि—"महेश्वर को भोज नाम का पुत्र हुआ था, जो धारा और मालवा का अधीश्वर था, उसी से मानमौर्य्य हुए।" इतिहास में ७८४ संवत् में बाप्पारावल का चित्तौर पर अधिकार करना लिखा है, तो इसमें संदेह नहीं रह जाता कि यही मानमौर्य्य बाप्पारावल के द्वारा प्रवंचित हुआ।

महाराज मान प्रसिद्ध बाप्पादित्य के मातुल थे। बाप्पादित्य ने नागेंद्र से भाग कर मौनमौर्य्य के यहाँ आश्रय लिया, उनके यहाँ सामंतरूप से रहने लगे। धीरे-धीरे उनका अधिकार सब सामंतों से बढ़ा, तब सामंत उनसे डाह करने लगे। किंतु बाप्पादित्य की सहायता से मानमौर्य्य ने यवनों को फिर भी पराजित किया। पर उन्हीं बाप्पादित्य की दोधारी तलवार मानमौर्य्य के किए कालभुजंगिनी और मौर्य्य-कुल के लिए तो मानो प्रलय-समुद्र की एक बड़ी लहर हुई। बाप्पादित्य के हाथ से मान मारे गये और राजस्थान में मौर्य्य-कुल का अब कोई राजा न रहा। यह धटना विक्रमीय संवत् ७८४ की है।

कोटा के कण्वाश्रम के शिवमंदिर में एक शिलालेख संवत् ७९५ का पाया गया है; उससे मालूम होता है कि आठवीं शताब्दी के अंत तक राजपूताना और मालवा पर मौर्य्य-नृपतियों का अधिकार रहा।

प्रसिद्ध मालवेश भोज भी परमारवंश का था जो १०३५ में हुआ। इस प्रकार परमार और मौर्य्य-कुल पिछले काल के विवरणों से एक में मिलाये जाते हैं। इस बात की शंका हो सकती है कि मौर्य्य-कुल की मूल शाखा परमार का नाम बौद्धों की प्राचीन पुस्तकों में क्यों नहीं मिलता। परंतु यह देखा जाता है

कि जब एक विशाल जाति से एक छोटा-सा कुल अलग होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता बना लेता है, तब प्रायः वह अपनी संज्ञा को छोड़कर नवीन नाम को अधिक प्रधानता देता है। जैसे इक्ष्वाकुवंशीय होने पर भी बुद्ध, शाक्य नाम से पुकारे गये और, जब शिलालेखों में मानमौर्य्य और परमार भोज के एक ही वंश में होने का प्रमाण हम पाते हैं, तब कोई संदेह नहीं रह जाता। हो सकता है, मौर्य्यों के बौद्धयुग के बाद जब इस शाखा का हिंदूधर्म की ओर अधिक झुकाव हुआ हो तो परमार नाम फिर से लिया जाने लगा हो, क्योंकि मौर्य्य लोग बौद्ध-प्रेम के कारण अधिक कुख्यात हो चुके थे। बौद्ध-विद्वेष के कारण अशोक के वंश को अक्षत्रिय तथा नीच कुल का प्रमाणित करने के लिए मध्य-काल में अधिक उत्सुकता देखी जाती है, किंतु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि प्रसिद्ध परमार-कुल और मौर्य्य-वंश परस्पर संबद्ध हैं।

इस प्रकार अज्ञात पिप्पिली-कानन के एक कोने से निकल कर विक्रम-संवत् के २६४ वर्ष पहले से ७८४ वर्ष बाद तक मौर्य्य लोगों ने पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, धारा, महेश्वर, चित्तौर (चित्रकूट) और अर्बुदगिरि आदि में अलग-अलग अपनी राजधानियाँ स्थापित कीं और लगभग १०५० वर्ष तक वे लोग मौर्य्य-नरपति कहकर पुकारे गये।

पिप्पिली-कानन के मौर्य्य

मौर्य्य-कुल का सबसे प्राचीन स्थान पिप्पिली-कानन था। चंद्रगुप्त के आदि-पुरुष मौर्य्य इसी स्थान के अधिपति थे और यह राजवंश गौतमबुद्ध के समय में प्रतिष्ठित गिना जाता था, क्योंकि बौद्धों ने महात्मा बुद्ध के शरीर-भस्म का भाग पाने वाले पिप्पिली-कानन के मौर्य्यों का भी उल्लेख किया है। पिप्पिली-कानन बस्ती जिले में नेपाल की सीमा पर है। वहाँ ढूह और स्तूप हैं, इसे अब पिपरहिया-कोट कहते हैं। फाहियान ने स्तूप आदि देखकर भ्रमवश इसी को पहले कपिलवस्तु समझा था। मि० पीपी ने इसी स्थान को पहले खुदवाया और बुद्धदेव की धातु तथा और जो वस्तुएँ मिलीं, उन्हें गवर्नमेंट को अर्पित किया था। धातु का प्रधान अंश सरकार ने स्याम के राजा को दिया।

इसी पिप्पिली-कानन में मौर्य्य लोग अपना छोटा-सा राज्य स्वतंत्रता से

संचालित करते थे, और ये क्षत्रिय थे, जैसा कि महावंश के इस अवतरण से सिद्ध होता है "मोरियानं खत्तियानं वंसजातं सिरीधर। चंदगुत्तो सिपज्जत्तं चाणक्को ब्रह्मणोततो।" हिंदू नाटककार विशाखदत्त ने चंद्रगुप्त को प्रायः वृषल कहकर संबोधित कराया है, इससे उक्त हिंदू काल की मनोवृत्ति ही ध्वनित होती है। वस्तुतः वृषल शब्द से तो उसका क्षत्रियत्व और भी प्रमाणित होता है, क्योंकि—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणानामदर्शनात्—

से यही मालूम होता है कि जो क्षत्रिय वैदिक क्रियाओं से उदासीन हो जाते थे, उन्हें धार्मिक दृष्टि से वृषलत्व प्राप्त होता था। वस्तुतः वे जाति से क्षत्रिय थे। स्वयं अशोक मौर्य्य अपने को क्षत्रिय कहता था।

यह प्रवाद भी अधिकता से प्रचलित है कि मौर्य्य-वंश मुरा नाम की शूद्रा से चला है और चंद्रगुप्त उसका पुत्र था। यह भी कहा जाता है कि चंद्रगुप्त मौर्य्य शूद्रा मुरा से उत्पन्न हुआ नंद का ही पुत्र था। किंतु V. A. Smith लिखते हैं—"But it is perhaps more probable that the dynasties of Mouryas and Nandas were not connected by blood." तात्पर्य कि—यह अधिक संभव है कि नंदों और मौर्य्यों का कोई रक्त-संबंध न था।

Maxmualler भी लिखते हैं—"The statement of Wilford that mourya meant in Sanskrit the offspring of barber and Sudra woman has never been proved.

मुरा शूद्रा तक ही बात न रही, एक नापित भी आ गया। मौर्य्य शब्द की व्याख्या करने जाकर कैसा भ्रम फैलाया गया है। मुरा से मौर या मौरेय वन सकता है न कि मौर्य्य। कुछ लोगों का अनुमान है कि शुद्ध शब्द मोरिय है, उससे संस्कृत शब्द मौर्य्य बना है, परंतु यह बात ठीक नहीं, क्योंकि अशोक के कुछ ही समय बाद के पतंजलि ने स्पष्ट मौर्य्य शब्द का उल्लेख किया है—'मौर्य्यैर्हि रण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः" (भाष्य ५-३-९९)। इसीलिए मौर्य्य शब्द अपने शुद्ध रूप में संस्कृत का है न कि कहीं से लेकर संस्कारित किया गया है। तब तो यह स्पष्ट है कि मौर्य्य शब्द अपनी संस्कृत-व्युत्पत्ति के द्वारा मुरा का पुत्रवाला अर्थ नहीं प्रकट करता। यह वास्तव में कपोल-कल्पना हैं और यह भ्रम यूनानी

लेखकों द्वारा प्रचारित किया गया है, जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। अर्थ-कथा में मौर्य्य शब्द की एक और व्याख्या मिलती है। शाक्य लोगों में आपस में बुद्ध के जीवन-काल में ही एक और झगड़ा हुआ और कुछ लोग हिमवान् के पिप्पिली-कानन-प्रदेश मे अपना नगर बसाकर रहने लगे। उस नगर के सुंदर घरों पर क्रौंच और मोर पक्षियों के चित्र अंकित थे, इसलिए वहाँ के शाक्य लोग मोरिय कहलाये। कुछ सिक्के बिहार में ऐसे भी मिले हैं, जिन पर मयूर का चिह्न अंकित है इससे अनुमान किया जाता है कि वे मौर्य्य-काल के सिक्के हैं। किंतु इससे भी उनके क्षत्रिय होने का प्रमाण ही मिलता है।

हिंदी 'मुद्राराक्षस' की भूमिका में भारतेंदुजी लिखते हैं कि—"महानंद, जो कि नंदवंश का था, उससे नौ पुत्र उत्पन्न हुए। बड़ी रानी से आठ और मुरा नाम्नी नापित-कन्या से नवाँ चंद्रगुप्त। महानंद और उसके मंत्री शकटार में वैमनस्य हो गया, इस कारण मंत्री ने चाणक्य द्वारा महानंद को मरवा डाला और चंद्रगुप्त को चाणक्य ने राज्य पर बिठाया, जिसकी कथा 'मुद्राराक्षस' में प्रसिद्ध है।"—किंतु यह भूमिका जिसके आधार पर लिखी हुई है, वह मूल संस्कृत मुद्राराक्षस के टीकाकर का लिखा हुआ उपोद्धात है। भारतेंदुजी ने उसे भी अविकल ठीक न मानकर 'कथा-सरित्सागर' के आधार पर उसका बहुत-सा संशोधन किया है। कहीं-कहीं उन्होंने कई कथाओं का उलट-फेर भी कर दिया हैं; जैसे हिरण्यगुप्त के रहस्य को बतलाने पर राजा के फिर शकटार से प्रसन्न होने की जगह विचक्षणा के उत्तर से प्रसन्न होकर शकटार को छोड़ देना तथा चाणक्य के द्वारा अभिचार से मारे जाने की जगह महानंद का विचक्षणा के दिये हुए विष से मारा जाना, इत्यादि।

ढुंढि लिखते है कि—"कलि के आदि में नंद नाम का एक राजवंश था। उसमें सर्वार्थसिद्धि मुख्य था। उसकी दो रानियाँ थीं—एक सुनंदा, दूसरी वृषला मुरा। सुनंदा को एक मांसपिंड और मुरा को मौर्य्य उत्पन्न हुआ। मौर्य्य से नौ पुत्र उत्पन्न हुए। मंत्री राक्षस ने उस मांसपिंड को जल में नौ टुकड़े करके रक्खा, जिससे नौ पुत्र हुए। सर्वार्थसिद्धि अपने उन नौ लड़कों को राज्य देकर तपस्या करने चला गया। उन नौ नंदों ने मौर्य्य और उसके लड़के को मार डाला। केवल एक चंद्रगुप्त प्राण बचाकर भागा, जो चाणक्य की सहायता से

नंदों का नाश करके, मगध का राजा बना।"

कथा-सरित्सागर के कथापीठ लंबक में चंद्रगुप्त के विषय में एक विचित्र कथा है। उसमें लिखा है कि—"नंद के मर जाने पर इंद्रदत्त ने (जो कि उसके पास गुरु-दक्षिणा के लिए द्रव्य माँगने गया था) अपने आत्मा को योग-बल से राजा के शरीर में डाला, और राज्य करने लगा। जब, उसने अपने साथी वररुचि को एक करोड़ रुपया देने के लिए कहा, तब मंत्री शकटार ने, जिसको राजा के मर कर फिर से जी उठने पर पहिले ही से शंका थी—विरोध किया। तब, उस योगनंद राजा ने चिढ़कर उसको कैद कर लिया और वररुचि को अपना मंत्री बनाया। योगनंद बहुत बिलासी हुआ। उसने सब राज्य-भार मंत्री पर छोड़ दिया। उसकी ऐसी दशा देखकर वररुचि ने शकटार को छुड़ाया और दोनों मिलकर राज्य-कार्य करने लगे। एक दिन, योगनंद की रानी के चित्र में उसकी जाँघ पर एक तिल बना देने से वररुचि पर शंका करके शकटार को उसको मार डालने की आज्ञा राजा ने दी, पर शकटार ने अपने उपकारी को छिपा रक्खा।

"योगनंद के पुत्र हिरण्यगुप्त ने जंगल में अपने मित्र रीछ से विश्वासघात किया। इससे वह पागल और गूंगा हो गया। राजा ने कहा—'यदि वररुचि होता तो इसका कुछ उपाय करता।' अनुकूल समय देखकर शकटार ने वररुचि को प्रकट किया। वररुचि ने हिरण्यगुप्त को सब रहस्य सुनाया और उसे निरोग किया। इस पर योगनंद ने पूछा कि तुम्हें यह बात कैसे ज्ञात हुई? वररुचि ने उत्तर दिया—'योगबल से—जैसे रानी की जाँघ का तिल।' राजा उस पर बहुत प्रसन्न हुआ, पर वह फिर न ठहरा और जंगल में चला गया। शकटार ने समय ठीक देखकर चाणक्य द्वारा योगनंद को मरवा डाला और चंद्रगुप्त को राज्य दिलाया।"

ढुंढि ने भी नाटक में वृपल और मौर्य्य शब्द का प्रयोग देखकर चंद्रगुप्त को मुरा का पुत्र लिखा है, पर पुराणों में कहीं भी चंद्रगुप्त को वृषल या शूद्र नहीं लिखा है। पुराणों में शूद्र शब्द का जो प्रयोग हुआ है, वह शूद्राजात महापद्म के वंश के लिए है, यह नीचे दिए विष्णु-पुराण के उद्धृत अंश पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जायगा—

ततो महानन्दी, इत्येते, शैशुनागा दशभूमिपालास्त्रीणिवर्षशतानि त्रिषष्ठ्य-धिकानि भविष्यन्ति ।। महानन्दिसुतः शूद्रागर्भोद्भवोऽतिलुब्धो महापद्मो नन्दः परशुराम इवापरोऽखिलक्षत्रान्तकारी भविता ।। ततः प्रभृति शूद्रा भूमिपाला भविष्यन्ति, स चैकच्छत्रामनुल्लंघितशासनो महापद्मः पृथिवीं भोक्ष्यति ।। तस्या-प्यष्टौ सुताः सुमाल्याद्या भवितारः ।। तस्य च महापद्मस्यानु पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।। महापद्मः तत् पुत्राश्च एकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति ।। नवैवतान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति ।। तेषामभावे मौर्याश्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति !। कौटिल्य एव चंद्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति ।।" (चतुर्थ अंश अध्याय २४)

इससे यह मालूम होता है कि महानंद के पुत्र महापद्म ने—जो शूद्राजात था—अपने पिता के बाद राज्य किया और उसके बाद सुमाल्य आदि आठ लड़कों ने राज्य किया और इन सबने मिलकर महानंद के बाद १०० वर्ष राज्य किया। इसके बाद चंद्रगुप्त को राज्य मिला।

अब यह देखना चाहिये कि चंद्रगुप्त को जो लोग महानंद का पुत्र बताते हैं, उन्हें कितना भ्रम है, क्योंकि उन लोगों ने लिखा है कि—"महानंद को मारकर चंद्रगुप्त ने राज्य किया।" परंतु ऊपर लिखी हुई वंशावली से यह प्रकट हो जाता है कि महानंद के बाद १०० वर्ष तक महापद्म और उसके लड़कों ने राज्य किया। तब चंद्रगुप्त की कितनी आयु मानी जाय कि महानंद के बाद महापद्मादि के १०० वर्ष राज्य कर लेने पर भी उसने २४ वर्ष शासन किया?

यह एक विलक्षण बात होगी—यदि 'नंदांतं क्षत्रियकुलम्' के अनुसार शूद्रा-जात महापद्म और उसके लड़के तो क्षत्रिय मान लिए जायँ और—'अतः परं शूद्राः पृथिवीं भोक्ष्यंति' के अनुसार शूद्रता चंद्रगुप्त से आरंभ की जाय। महानंद को जब शूद्रा से एक ही लड़का महापद्म था, तब दूसरा चंद्रगुप्त कहाँ से आया? पुराणों में चंद्रगुप्त को कहीं भी महानंद का पुत्र नहीं लिखा है। यदि सचमुच अंतिम नंद का ही नाम ग्रीकों ने Zandrames रक्खा था तो अवश्य ही हम कहेंगे कि विष्णुपुराण की महापद्म वाली कथा ठीक ग्रीकों से मिल जाती है। यह अनुमान होता है कि महापद्म वाली कथा, पीछे से बौद्ध-द्वेषी लोगों के द्वारा चंद्रगुप्त की कथा में जोड़ी गई है, क्योंकि उसी का पौत्र अशोक बौद्ध-

धर्म का प्रधान प्रचारक था।

ढुंढि के उपोद्घात से एक बात का और पता लगा है कि चंद्रगुप्त महानंद का पुत्र नहीं, किंतु मौर्य्य सेनापति का पुत्र था। महापद्मादि शूद्रागर्भोद्भव होने पर भी नंदवंशी कहाये, तब चंद्रगुप्त मुरा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण नंदवंशी होने से क्यों वंचित किया जाता है? इसलिए मानना पड़ेगा कि नंदवंश और मौर्य्य वंश भिन्न हैं। मौर्य्यवंश अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, जिसका उल्लेख पुराण, बृहत्कथा, कामंदकीय इत्यादि में मिलता है और पिछले काल के चित्तौर आदि के शिलालेखों में भी इसका उल्लेख है। इसी मौर्य्यवंश में चंद्रगुप्त उत्पन्न हुआ।

चंद्रगुप्त का बाल्य जीवन

अर्थकथा, स्थविरावली, कथासरित्सागर और ढुंढि के आधार पर चंद्रगुप्त के जीवन की प्राथमिक घटनाओं का पता चलता है।

मगध की राजधानी पाटलिपुत्र, शोण और गंगा के संगम पर थी। राज-मंदिर, दुर्ग, लंबी-चौड़ी पण्य-वीथिका, प्रशस्त राजमार्ग इत्यदि राजधानी में किसी उपयोगी वस्तु का अभाव न था। खाईं, सेना, रणतरी इत्यादि से वह सुरक्षित भी थी। उस समय महापद्म का वहाँ राज्य था।

पुराण में वर्णित अखिल क्षत्रिय-निधनकारी महापद्म नंद या कालाशोक के लड़कों में सबसे बड़ा पुत्र एक नीच स्त्री से उत्पन्न हुआ था, जो मगध छोड़कर किसी अन्य प्रदेश में रहता था। उस समय किसी डाकू से उससे भेंट हो गई और वह अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए उन्हीं डाकुओं के दल में मिल गया। जब उनका सरदार एक चढ़ाई में मारा गया, तो वही राजकुमार उन सबों का नेता बन गया और उसने पाटलिपुत्र पर चढ़ाई की। उग्रसेन के नाम से उसने थोड़े दिनों के लिए पाटलिपुत्र का अधिकार छीन लिया, इसके बाद उसके आठ भाइयों ने कई वर्षों तक राज्य किया।

नवें नंद का नाम धननंद था। उसने गंगा के घाट बनवाये और उसके प्रवाह को कुछ दिनों के लिए हटाकर उसी जगह अपना भारी खजाना गाड़ दिया। उसे लोग धननंद कहने लगे। धननंद के अन्नक्षेत्र में एक दिन तक्षशिला

निवासी ब्राह्मण चाणक्य आया और सबसे उच्च आसन पर बैठ गया, जिसे देखकर धननंद चिढ़ गया और उसे अपमानित करके निकाल दिया। चाणक्य ने धननंद का नाश करने की प्रतिज्ञा की।

कहते हैं कि जब नंद बहुत विलासी हुआ, तो उसकी क्रूरता और भी बढ़ गयी—प्राचीन मंत्री शकटार को बंदी करके उसने वररुचि नामक ब्राह्मण को अपना मंत्री बनाया। मगध-निवासी उपवर्ष के दो शिष्य थे, जिनमें से पाणिनि तक्षशिला में विद्याभ्यास करने गया था किंतु वररुचि, जिसकी राक्षस के साथ मैत्री थी, नंद का मंत्री बना। शकटार जब बंदी हुआ तब वररुचि ने उसे छुड़ाया, और एक दिन वही दशा मंत्री वररुचि की भी हुई। इनका नाम कात्यायन भी था। बौद्ध लोग इन्हें 'मगधदेशीय ब्रह्मबंधु' लिखते हैं और पाणिनि के सूत्रों के यही वार्त्तिककार कात्यायन हैं। (कितने लोगों का मत है कि कात्यायन और वररुचि भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे)

शकटार ने अपने वैर का समय पाया, और वह विष-प्रयोग द्वारा तथा एक दूसरे को लड़ाकर, नंदों में आंतरिक द्वेष फैलाकर, एक के बाद दूसरे को राजा बनाने लगा। धीरे-धीरे नंदवंश का नाश हुआ, और केवल अंतिम नंद बचा। उसने सावधानी से अपना राज्य संभाला और वररुचि को फिर मंत्री बनाया। शटकार ने प्रसिद्ध चाणक्य को, जो कि नीति-शास्त्र विशारद होकर गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने के लिए राजधानी में आया था, नंद का विरोधी बना दिया। वह क्रुद्ध ब्राह्मण अपनी प्रतिहिंसा पूरी करने के लिए सहायक ढूँढ़ने लगा।

पाटलिपुत्र के नगर-प्रांत में पिप्पिली-कानन के मौर्य्य-सेनापति का एक विभवहीन गृह था। महापद्म-नंद के और उनके पुत्रों के अत्याचार से मगध काँप रहा था। मौर्य्य-सेनापति के बंदी हो जाने के कारण कुटुंब का जीवन किसी प्रकार कष्ट से बीत रहा था।

एक बालक उसी घर के सामने खेल रहा था। कई लड़के उसकी प्रजा बने थे और वह था उनका राजा। उन्हीं लड़कों में से वह किसी को घोड़ा और किसी को हाथी बनाकर चढ़ता और दंड तथा पुरस्कार आदि देने का राजकीय अभिनय कर रहा था। उसी ओर से चाणक्य जा रहे थे। उन्होंने उस बालक

की राज-क्रीड़ा बड़े ध्यान से देखी। उनके मन में कुतूहल हुआ और कुछ विनोद भी। उन्होंने ठीक-ठीक ब्राह्मण की तरह उस बालक राजा के पास जाकर याचना की—"राजन्, मुझे दूध पीने के लिए गऊ चाहिए।" बालक ने राजोचित उदारता का अभिनय करते हुए सामने चरती हुई गौओं को दिखलाकर कहा—"इनमें से जितनी इच्छा हो, तुम ले लो।"

ब्राह्मण ने हँसकर कहा–"राजन् जिसकी ये गायें हैं, वह मारने लगे तो ?"

बालक ने सगर्व छाती फुलाकर कहा—"किसका साहस है जो मेरे शासन को न माने ? जब मैं राजा हूँ, तब मेरी आज्ञा अवश्य मानी जायगी।"

ब्राह्मण ने आश्चर्यपूर्वक बालक से पूछा—"राजन्, आपका शुभ नाम क्या है ?"

तब तक बालक की माँ वहाँ आ गयी, और ब्राह्मण से हाथ जोड़कर बोली—"महाराज, यह बड़ा धृष्ट लड़का है, इसके किसी अपराध पर ध्यान न दीजियेगा।"

चाणक्य ने कहा—"कोई चिंता नहीं, यह बड़ा होनहार बालक है। इसकी मानसिक उन्नति के लिए तुम इसे किसी प्रकार राजकुल में भेजा करो।"

उसकी माँ रोने लगी। बोली—"हम लोगों पर राजकोप है, और हमारे पति राजा की आज्ञा से बंदी किये गये हैं।"

ब्राह्मण ने कहा—"बालक का कुछ अनिष्ट न होगा, तुम इसे अवश्य राज कुल में ले जाओ !" इतना कह, बालक को आशीर्वाद देकर चाणक्य चले गये। बालक की माँ बहुत डरते-डरते एक दिन, अपने चंचल और साहसी लड़के को लेकर राजसभा में पहुँची। नंद एक निष्ठुर, मूर्ख और त्रासजनक राजा था। उसकी राजसभा बड़े-बड़े चापलूस मूर्खों से भरी रहती थी। पहले के राजा लोग एक-दूसरे के बल, बुद्धि और वैभव की परीक्षा लिया करते थे और इसके लिए वे तरह-तरह के उपाय रचते थे। जब बालक माँ के साथ राजसभा में पहुंचा, उसी समय किसी राजा के यहाँ से नंद की राजसभा की बुद्धि का अनुमान करने के लिए लोहे के बंद पिंजड़े में मोम का सिंह बनाकर भेजा गया था और उसके साथ यह कहलाया गया था कि पिंजड़े को खोले बिना ही सिंह को निकाल लीजिये।

सारी राजसभा इस पर विचार करने लगी, पर उन चाटुकार मूर्ख सभासदों को कोई उपाय न सूझा। अपनी माता के साथ वह बालक यह लीला देख रहा था। वह भला कब मानने वाला? उसने कहा—"मैं निकाल दूंगा।" सब लोग हँस पड़े। बालक की ढिठाई भी कम न थी। राजा को भी आश्चर्य हुआ। नंद ने कहा—"यह कौन है।"

मालूम हुआ कि यह राजबंदी मौर्य्य-सेनापति का लड़का है। फिर क्या—नंद की मूर्खता की अग्नि में एक और आहुति पड़ी। क्रोधित होकर वह बोला—"यदि तू इसे न निकाल सका, तो तू भी इस पिंजड़े में बंद कर दिया जायगा।" उसकी माता ने देखा कि यह भी कहाँ से विपत्ति आयी; परंतु बालक निर्भीकता से आगे बढ़ा और पिंजड़े के पास जाकर उसको भलीभाँति देखा। फिर लोहे की शलाकाओं को गरम करके उस सिंह को गलाकर पिंजड़े को खाली कर दिया।[1] सब लोग चकित रह गये।

राजा ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

बालक ने कहा—"चंद्रगुप्त।"

ऊपर के विवरण से पता चलता है कि चंद्रगुप्त किशोरावस्था में नंदों की सभा में रहता था। वहाँ उसने अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया।

पिप्पिली-कानन के मौर्य्य लोग नंदों के क्षत्रिय-नाशकारी शासन से पीड़ित थे, प्रायः सब दबाये जा चुके थे। उस समय ये क्षत्रिय राजकुल नंदों की प्रधान शक्ति से आक्रांत थे। मौर्य्य भी नंदों की विशाल वाहिनी में सेनापति का काम करते थे। संभवतः वे किसी कारण से राजकोप में पड़े थे ओर उनका पुत्र चंद्रगुप्त नंदों की राजसभा में अपना समय बिताता था। उसके हृदय में नंदों के प्रति घृणा का होना स्वाभाविक था। जस्टिनस ने लिखा है—

When by his insolent behaviour he has offended Nandas,

---

१. "मधूच्छिष्टमयं धातुं जीवन्तमिव पञ्जरे। सिंहमादाय नन्देभ्यः प्राहिणोत्सिहलाधिपः। यो द्रावयेदियं क्रूरं द्वारमनुद्‌घाट्य पञ्जरं। सर्वोऽस्ति कश्चित्सुमतिरित्येवं संदिदेश च। चंद्रगुप्तस्तु मेधावी तप्तायसशलाकया। व्यलापयत्पञ्जरस्थं व्यस्मयन्त ततोऽखिलाः।"

and was ordered by king to be put to death, he sought safety by a speedy flight. (Justinus : X. V.)

चंद्रगुप्त ने किसी वाद विवाद या अनबन के कारण नंद को क्रुद्ध कर दिया और इस बात में बौद्ध लोगों का विवरण, ढुंढि का उपोद्घात तथा ग्रीक इतिहास-लेखक सभी सहमत हैं कि उसे राज-क्रोध के कारण पाटलिपुत्र छोड़ना पड़ा।

शकटार और वररुचि के संबंध की कथायें, जो कथा-सरित्सागर में मिलती हैं—इस बात का संकेत करती हैं कि महापद्म के पुत्र बड़े उच्छृंखल और क्रूर शासक थे। गुप्त-षड्यंत्रों से मगध पीड़ित था। राजकुल में नित्य नये उपद्रव, विरोध और द्वंद्व चला करते थे। उन्हीं कारणों से चंद्रगुप्त की भी कोई स्वतंत्र परिस्थिति उसे भावी नियति की ओर अग्रसर कर रही थी। चाणक्य की प्रेरणा से चंद्रगुप्त नें सीमाप्रांत की ओर प्रस्थान किया।

महावंश के अनुसार बुद्ध-निर्वाण के १४० वर्ष बाद अंतिम नंद को राज्य मिला, जिसने २२ वर्ष राज्य किया। इसके बाद चंद्रगुप्त को राज्य मिला। यदि बुद्ध का निर्वाण ५४३ ई० पूर्व में मान लिया जाय, तो उसमें नंद-राज्य तक का समय १६२ घटा देने से ३८१ ई० पूर्व में चंद्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि मानी जायगी। पर यह सर्वथा भ्रमात्मक है, क्योंकि ग्रीक इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि "तक्षशिला में जब ३२६ ई० पूर्व में सिकंदर से चंद्रगुप्त ने भेंट की थी, तब वह युवक राजकुमार था।" अस्तु, यदि हम उसकी अवस्था उस समय २० वर्ष के लगभग मान लें, जो कि असंगत न होगी, तो उसका जन्म ३४६ ई० पूर्व के लगभग हुआ होगा। मगध के राज-विद्रोह काल में वह १९ या २० वर्ष का रहा होगा।

मगध से चंद्रगुप्त के निकलने की तिथि ईसवीय पूर्व ३२७ वा ३२८ निर्धारित की जा सकती है, क्योंकि ३२६ में तो वह सिकंदर से तक्षशिला में मिला ही था। उसके प्रवास की कथा बड़ी रोचक है। सिकंदर जिस समय भारतवर्ष में पदार्पण कर रहा था और भारतीय जनता के सर्वनाश का उपक्रम तक्षशिला-धीश्वर ने करना विचार लिया था—वह समय भारत के इतिहास में स्मरणीय है, तक्षशिला नगरी अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। जहाँ का विश्वविद्यालय पाणिनि और जीवक ऐसे छात्रों का शिक्षक हो चुका था—वही

तक्षशिला अपनी स्वतंत्रता पद-दलित कराने की आकांक्षा में आकुल थी और उसका उपक्रम भी हो चुका था। कूटनीति-चतुर सिकंदर ने, जैसा कि ग्रीक लोग कहते हैं १,००० टेलेंट (प्रायः अड़तीस लाख रुपया) देकर लोलुप देशद्रोही तक्षशिलाधीश को अपना मित्र बनाया। उसने प्रसन्न मन से अपनी कायरता का मार्ग खोल दिया और बिना बाधा सिकंदर को भारत में आने दिया। ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा हम यह पता पाते हैं कि उसी समय (ई० पूर्व ३२६) चंद्रगुप्त शत्रुओं से बदला लेने के उद्योग में अनेक प्रकार का कष्ट मार्ग में झेलते-झेलते भारत की अर्गला तक्षशिला नगरी में पहुँचा था। तक्ष-शिला के राजा ने महाराज पुरु से अपना बदला लेने के लिए भी सिकंदर के लिए भारत का द्वार मुक्त कर दिया था। उन्हीं ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा यह पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने एक सप्ताह भी अपने को परमुखापेक्षी नहीं बनाये रक्खा और क्रुद्ध होकर वहाँ से चला आया। जस्टिनस लिखता है कि उसने अपनी असहनशीलता के कारण सिकंदर को असंतुष्ट किया। वह सिकंदर का पूरा विरोधी वन गया।

For having offended Alexander by his impertinent Language he was ordered to be put to death, and escaped only by flight. (JUSTINUS In History of A. S. Literature.)

सिकंदर और चंद्रगुप्त पंजाब में

सिकंदर ने तक्षशिलाधीश की सहायता से जेहलम को पार करके पोरस के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में क्षत्रिय महाराज पुरु (पर्वतेश्वर) किस तरह लड़े और वह कैसा भयंकर युद्ध हुआ, यह केवल इससे ज्ञात होता है कि स्वयं जग-द्विजयी सिकंदर को कहना पड़ा—"आज हमको अपनी बराबरी का भीमपराक्रम शत्रु मिला और यूनानियों को तुल्य-बल से आज ही युद्ध करना पड़ा।" इतना ही नहीं, सिकंदर का प्रसिद्ध अश्व 'बुकाफेलस' इसी युद्ध में हत हुआ और सिकंदर स्वयं भी आहत हुआ।

यह अनिश्चित है कि सिकंदर को मगध पर आक्रमण करने को उत्तेजित करने के लिए ही चंद्रगुप्त उसके पास गया था, अथवा ग्रीक-युद्ध की शिक्षा पद्धति सीखने के लिए परंतु उसने सिकंदर से तक्षशिला में अवश्य भेंट की

थी। यद्यपि उसका कोई कार्य वहाँ नहीं हुआ, पर उसे ग्रीकवाहिनी की रणचर्या अवश्य ज्ञात हुई, जिससे पार्वतीय सेना से उसने मगध-राज्य का ध्वंस किया।

क्रमशः वितस्ता, चंद्रभागा, इरावती के प्रदेशों को विजय करता हुआ सिकंदर विपाशा-तट तक आया, और फिर मगध-राज्य का प्रचंड प्रताप सुनकर उसने दिग्विजय की इच्छा को त्याग दिया और ३२५ ई० पूर्व में फिलिप नामक पुरुष को क्षत्रप बनाकर आप काबुल की ओर गया। दो वर्षों के बीच में चंद्रगुप्त भी उसी प्रांत में घूमता रहा और जब वह सिकंदर का विरोधी बन गया तो उसी ने पार्वत्य जातियों को सिकंदर से लड़ने के लिए उत्तेजित किया जिसके कारण सिकंदर को इरावती से पाटल तक पहुँचने में दस मास का समय लग गया और इस बीच में इन आक्रमणकारियों से सिकंदर की बहुत क्षति हुई। इस मार्ग में सिकंदर को मालव-जाति से युद्ध करने में बड़ी हानि उठानी पड़ी। एक दुर्ग के युद्ध में तो उसे ऐसा अस्त्राघात मिला कि वह महीनों तक कड़ी बीमारी झेलता रहा। जल-मार्ग से जानेवाले सिपाहियों को निश्चय हो गया था कि सिकंदर मर गया। किसी-किसी का मत है कि सिकंदर की मृत्यु का कारण यही घाव था।

सिकंदर भारतवर्ष लूटने आया, पर जाते समय उसकी यह अवस्था हुई कि अर्थाभाव से अपने सेक्रेटरी यूडोनिमिस से उसने कुछ द्रव्य माँगा और न पानेपर उसका कैंप फुँकवा दिया। सिकंदर के भारतवर्ष में रहने के समय में ही चंद्रगुप्त के द्वारा प्रचारित सिकंदर-द्रोह पूर्णरूप से फैल गया था और इसी समय कुछ पार्वत्य राजा चंद्रगुप्त के विशेष अनुगत हो गए थे। उनको रण-चतुर बनाकर चंद्रगुप्त ने एक अच्छी शिक्षित सेना प्रस्तुत कर ली थी— जिसकी परीक्षा प्रथमतः ग्रीक सैनिकों ने ली। इसी गड़बड़ी में फिलिप मारा गया[1] और उस प्रदेश के लोग पूर्णरूप से स्वतंत्र हो गये। चंद्रगुप्त को पार्वतीय सैनिकों से बड़ी सहायता मिली और वे उसके मित्र बन गये। विदेशी शत्रुओं के साथ भारतवासियों का युद्ध देखकर चंद्रगुप्त एक रण-चतुर नेता बन गया।

---

१. सिकंदर के चले जाने पर इसी फिलिप ने षड्यंत्र करके पोरस को मरवा डाला, जिससे बिगड़ कर उसकी हत्या हुई।

धीरे-धीरे उसने सीमावासी पार्वतीय लोगों को एक में मिला लिया। चंद्रगुप्त और पर्वतेश्वर विजय के हिस्सेदार हुए और सम्मिलित शक्ति से मगध-राज्य-विजय करने के लिए चल पड़े। अब यह देखना चाहिये कि चंद्रगुप्त और चाणक्य की सहायक सेना में किन-किन देशों की सेनायें थीं और वे कब पंजाब से चले।

बहुत से विद्वानों का मत है कि जो सेना चंद्रगुप्त के साथ थी, वह ग्रीकों की थी। यह बात बिलकुल असंगत नहीं प्रतीत होती। जब फिलिप तक्षशिला के समीप मारा गया—तो संभव है कि बिना सरदार की सेना में से किसी प्रकार पर्वतेश्वर ने ऐसे कुछ ग्रीकों को अपनी ओर मिला लिया हो जो कि केवल धन के लालच से ग्रीस छोड़कर भारतभूमि तक आये थे। उस सम्मिलित आक्रमणकारी सेना में कुछ ग्रीकों का होना असंभव नहीं है, क्योंकि मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुंढि लिखते हैं—

नन्दराज्यार्धपणनात्समुत्थाप्य महाबलम्।
पर्वतेन्द्रो म्लेच्छबलं न्यरुन्धत्कुसुमं पुरम्॥

तैलंग महाशय लिखते हैं कि "The yavanas referred in our play Mudrarakshasa were probably some of frontier tribes." कुछ तो उस सम्मिलित सेना के नीचे दिए हुए नाम हैं, जिन्हे तैलंग महाशय ने लिखा है।

मुद्राराक्षस—	**तैलंग—**
शक	सीदियन
यवन (ग्रीक ?)	अफगान
किरात	सेवेज ट्राइब
पारसीक	परशियन
बाल्हीक	बैक्ट्रियन

इस सूची के देखने से ज्ञात होता है कि ये सब जातियाँ प्रायः भारत की उत्तर-पश्चिम की सीमा में स्थित हैं। इस सेना में उपर्युक्त जातियाँ सम्मिलित रहीं हो तो असंभव नहीं है। चंद्रगुप्त ने असभ्य सेनाओं को ग्रीक-प्रणाली से

शिक्षित करके उन्हें अपने कार्य योग्य बनाया। मेरा अनुमान है कि यह घटना ३२३ ई० पूर्व में हुई, क्योंकि वही समय सिकंदर के मरने का है। उसी समय यूडेमिम नामक ग्रीक कर्मचारी और तक्षशिलाधीश के कुचक्र से फिलिप के द्वारा पुरु (पर्वतेश्वर) की हत्या हुई थी। अस्तु, पंजाब-प्रांत एक प्रकार से अराजक हो गया और ३२२ ई० पूर्व में इन सबों को स्वतंत्र बनाते हुए ३२१ ई० पूर्व में मगध-राजधानी पाटलिपुत्र को चंद्रगुप्त ने जा घेरा।[1]

मगध में चंद्रगुप्त

अपमानित चंद्रगुप्त बदला लेने के लिए खड़ा था, मगध राज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी—नंद आंतरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था, चाणक्य चालित म्लेच्छ-सेना कुसुमपुर को चारों ओर से घेरे थी। चंद्रगुप्त अपनी शिक्षित सेना को बराबर उत्साहित करता हुआ सुचतुर रण-सेनापति का कार्य करने लगा।

पंद्रह दिनों तक कुसुमपुर को बराबर घेरे रहने के कारण और बार-बार खंड-युद्धों में विजयी होने के कारण चंद्रगुप्त एक प्रकार से मगध-विजयी हो गया। नंद ने, जो कि पूर्वकृत पापों से भयभीत और आतुर हो गया था, नगर से निकलकर चले जाने की आज्ञा माँगी। चंद्रगुप्त इस बात से सहमत हो गया कि धननंद अपने साथ जो कुछ ले जा सके ले जाय, पर चाणक्य की एक चाल यह भी थी, क्योंकि उसे मगध की प्रजा पर शासन करना था। इसलिए यदि धननंद मारा जाता तो प्रजा के विद्रोह करने की संभावना थी। इसमें स्थविरावली तथा ढुंढि के विवरण में मतभेद है, क्योंकि स्थविरावलीकार लिखते हैं कि चाणक्य ने धननंद को चले जाने की आज्ञा दी, पर ढुंढि कहते हैं, चाणक्य के द्वारा शस्त्र से धननंद निहत हुआ। मुद्राराक्षस से जाना जाता है कि वह विष प्रयोग से

---

१. Justinus says—
Sandrocottus gave liberty to India after Alexander's retreat but soon converted the name of liberty into servitude after his success, subjecting those whom he had rescued from foreign domination to his own authority. (H. of A. S. Lit.)

मारा गया। पर यह बात पहले नंदों के लिए संभव प्रतीत होती है[१]। चाणक्य की नीति की ओर दृष्टि डालने से यही ज्ञात होता है कि जान-बूझकर नंद को अवसर दिया गया, और इसके बाद किसी गुप्त प्रकार से उसकी हत्या हुई।

कई लोगों का मत हैं कि पर्वतेश्वर की हत्या बिना अपराध चाणक्य ने की। पर जहाँ तक संभव है—पर्वतेश्वर को कात्यायन के साथ मिला हुआ जानकर ही चाणक्य के द्वारा उसे विषकन्या मिली और यही मत भारतेंदुजी का भी है। मुद्राराक्षस को देखने से भी यही ज्ञात होता है कि राक्षस पीछे पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु से मिल गया था। संभव है कि उसका पिता भी वररुचि की ओर पहले मिल गया हो और इसी बात को जान लेने पर चंद्रगुप्त की हानि की संभावना देखकर किसी उपाय से पर्वतेश्वर की हत्या हुई हो।

तात्कालिक स्फुट विवरणों से ज्ञात होता है कि मगध की प्रजा और समीप वर्त्ती जातियाँ चंद्रगुप्त के प्रतिपक्ष में खड़ी हुईं। उस लड़ाई में भी अपनी कूट-नीति के द्वारा चाणक्य ने आपस में भेद करा दिया। प्रबल उत्साह के कारण, अविराम परिश्रम और अध्यवसाय से, अपने बाहुबल और चाणक्य के बुद्धिबल से, सामान्य भू-स्वामी चंद्रगुप्त, मगध-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा।

बौद्धों की पहली सभा कालाशोक या महापद्म के समय में हुई। बुद्ध के ९० वर्ष बाद यह गद्दी पर बैठा और इसके राज्य के दश वर्ष बाद सभा हुई; उसके बाद उसने १८ वर्ष राज्य किया। यह ११८ वर्ष का समय, बुद्ध के निर्वाण से कालाशोक के राजत्व-काल तक है। कालाशोक का पुत्र २२ वर्ष तक राज्य करता रहा, उसके बाद २२ वर्ष तक नंद; उसके बाद चंद्रगुप्त को राज्य मिला। (११८ + २२ + २२ = १६२) बुद्ध-निर्वाण के १६२ वर्ष बाद चंद्रगुप्त को राज्य मिला। बुद्ध का समय यदि ५४३ ई० पूर्व माना जाय, तब तो ५४३-१६२ = ३८१ ई० पूर्व में ही चंद्रगुप्त का राज्यारोहण निर्धारित होता है। दूसरा मत मैक्समूलर आदि विद्वानों का है कि बुद्ध-निर्वाण ४७७ ई० पूर्व में हुआ। इस

१, However mysterious the nine Nandas may be if indeed they really were nine, there is uo doubt that the last of them was deposed and slain by Chandragupta. (V. A. Smith, E. H. of India)

प्रकार उक्त राज्यारोहण का समय ३१५ ई० पूर्व निकलता है। इससे ग्रीक समय का मिलान करने से एक तो ४० वर्ष बढ़ जाता है, दूसरा ५ या ६ वर्ष घट जाता है।

महावीर स्वामी के निर्वाण के १५५ वर्ष बाद, जैनियों के मत से चंद्रगुप्त राज्य पर बैठा, ऐसा मालूम होता है। आर्य्य-विद्या-सुधाकर के अनुसार ४७० विक्रम पूर्व में महावीर स्वामी का वर्त्तमान होना पाया जाता है। इससे यदि ५२० ई० पूर्व में महावीर स्वामी का निर्वाण मान लें, तो उसमें से १५५ घटा देने से ३६५ ई० पूर्व में चंद्रगुप्त के राज्यारोहण का समय होता है—जो सर्वथा असंभव है—यह मत भी बहुत भ्रमपूर्ण है।

पंडित रामचंद्रजी शुक्ल ने मेगास्थनीज की भूमिका में लिखा है कि ३१६ ई० पूर्व में चंद्रगुप्त गद्दी पर बैठा और २९२ ई० पूर्व तक उसने २४ वर्ष राज्य किया।

पंडितजी ने जो पाश्चात्य लेखकों के आधार पर चंद्रगुप्त का राज्यारोहण-समय लिखा है, वह भी भ्रम से रहित नहीं है, क्योंकि स्ट्राबो के मतानुसार २९६ में Deimachos का 'मिशन' बिंदुसार के समय में आया था। यदि २९२ तक चंद्रगुप्त का राज्य-काल मान लिया जाय तो डिमाकस, चंद्रगुप्त के राजत्व-काल में ही आया था, ऐसा प्रतीत होगा, क्योंकि शुक्लजी के मत में ३१६ ई० पूर्व से २९२ ई० पूर्व तक चंद्रगुप्त का राजत्व-काल है, डिमाकस के मिशन का समय २९६ ई० पूर्व जिसके अंतर्गत हो जाता है। यदि हम चंद्रगुप्त का राज्यारोहण ३२१ ई० पूर्व में मानें, तो उसमें से उसका राजत्व-काल २४ वर्ष घटा देने से २९७ ई० पूर्व तक उसका राजत्व-काल और २९६ ई० पूर्व में बिंदुसार का राज्यारोहण और डिमाकस के मिशन का समय ठीक हो जाता है। ऐतिहासिकों का जो अनुमान है कि २५ वर्ष की अवस्था में चंद्रगुप्त गद्दी पर बैठा—वह भी ठीक हो जाता है। क्योंकि पूर्व-निर्धारित चंद्रगुप्त के जन्म-समय ३४६ ई० पूर्व में २५ वर्ष घटा देने से भी ३२१ ई० पूर्व ही बचता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि चंद्रगुप्त पाटलिपुत्र में मगध-राज्य के सिंहासन पर ईसवीय पूर्व ३२१ में आसीन हुआ।

विजय

उस समय गंगा के तट पर दो विस्तृत राज्य थे, जैसा कि मेगास्थनीज लिखता है, एक प्राच्य (Prassi) और दूसरा गंगरिडीज़ (Gangarideais)। प्राच्य राज्य में अवंती, कोसल, मगध, वाराणसी, बिहार आदि देश थे और दूसरा गंगरिडीज़ गंगा के उस भाग के तट पर था, जो कि समुद्र के समीप में था। वह बंगाल था। गंगरिडीज़ और गौड़ एक ही देश का नाम प्रतीत होता है। गौड़ राज्य का राजा नंद के अधीन था। अवंती में भी एक मध्य-प्रदेश की राजधानी थी, वह भी नंदाधीन थी। बौद्धों के विवरण से ज्ञात होता है कि ताम्रलिप्ति[1] जिसे अब तामलूक कहते हैं, मिदनापुर जिले में उस समुद्र-तट पर अवस्थित गंगरिडीज़ के प्रसिद्ध नगरों में था।

प्राच्य देश की राजधानी पालीबोथा थी, जिसे पाटलिपुत्र कहना असंगत न होगा। मेगास्थनीज लिखता है, कि गंगरिडीज़ की राजधानी पर्थिलीस थी। डाक्टर श्यानवक का मत है कि संभवतः यह वर्धमान ही था, जिसे ग्रीक लोग पार्थिलीस कहते थे। इसमें विवाद करने का अवसर नहीं है, क्योंकि वर्धमान गौड़देश के प्राचीन नगरों में है और यह राजधानी के योग्य भूमि पर बसा है।

केवल नंद को ही पराजित करने से चंद्रगुप्त को एक बड़ा विस्तृत राज्य मिला, जो आसाम से लेकर भारत के मध्यप्रदेश तक व्याप्त था।

अशोक के जीवनीकार लिखते हैं कि अशोक का राज्य चार प्रादेशिक शासकों से शासित होता था। तक्षशिला—पंजाब और अफगानिस्तान की राजधानी थी, तोषाली—कलिंग की, अवंती—मध्यप्रदेश की और स्वर्णगिरि—भारतवर्ष के दक्षिण-भाग की राजधानी थी।[2] अशोक की जीवनी से ज्ञात होता है कि उसने केवल कलिंग-विजय किया था। बिंदुसार की विजयों की गाथा

---

१. अस्तीह नगरी लोके ताम्रलिप्तीति विश्रुता। ततः सततपिता तेन तनयेन समंययौद्वीपान्तरंस्नुषाहेतोर्वाणिज्यव्यपदेशतः (कथासरित्सागर ५-६८) इससे ज्ञात होता है, कि ताम्रलिप्ति समुद्र-तट पर अवस्थित थी, जहाँ से द्वीपांतर जाने में लोगों को सुविधा होती थी।

२. Vincent A. Smith . Life of Ashoka.

कहीं भी नहीं मिलती। मि० स्मिथ ने लिखा है कि It is more probable that the conquest of the south was the work of Bindusar— परंतु इसका कोई प्रमाण नहीं है।

प्रायद्वीप खंड को जीतकर चंद्रगुप्त ने स्वर्णगिरि में उसका शासक रक्खा और संभवतः यह घटना उस समय की है, जब विजेता सिल्यूकस एक विशाल साम्राज्य की नींव सीरिया प्रदेश में डाल रहा था। वह घटना ३१६ ई० पूर्व में हुई।

इस समय चंद्रगुप्त का शासन भारतवर्ष में प्रधान था और छोटे-छोटे राज्य यद्यपि स्वतंत्र थे, पर वे भी चंद्रगुप्त के शासन से सदा भयभीत होकर मित्रभाव रखते थे। उसका राज्य पांडुचेर और कनानूर से हिमालय की तराई तक तथा सतलज से आसाम तक था। केवल कुछ राज्य दक्षिण के, जैसे—केरल इत्यादि और पंजाब में वे प्रदेश—जिन्हें सिकंदर ने विजय किया था, स्वतंत्र थे; किंतु चंद्रगुप्त पर ईश्वर की अपार कृपा थी, जिसने उसे ऐसा सुयोग दिया कि वह भी ग्रीस इत्यादि विदेशों में अपना आतंक फैलावे।

सिकंदर के मर जाने के बाद ग्रीक जनरलों में बड़ी स्वतंत्रता फैली। ईसवीय पूर्व ३२३ में सिकंदर मरा। उसके प्रतिनिधि-स्वरूप पर्दिकस शासन करने लगा; किंतु इससे भी असंतोष हुआ, सब जनरलों और प्रधान कर्मचारियों ने मिलकर एक सभा की। ई० पूर्व ३२१ में सभा हुई और सिल्यूकस बैबिलोन की गद्दी पर बैठाया गया। टालेमी आदि मिस्र के राजा समझे जाने लगे; पर आंटिगोनस, जो कि पूर्वीय एशिया का क्षत्रप था, अपने बल को बढ़ाने लगा और इसी कारण सब जनरल उसके विरुद्ध हो गये, यहाँ तक कि ग्रीक-साम्राज्य से अलग होकर सिल्यूकस ने ३१२ ई० पूर्व में अपना स्वाधीन राज्य स्थापित किया। बहुत-सी लड़ाइयों के बाद संधि हुई और सीरिया इत्यादि प्रदेशों का आंटिगोनस स्वतंत्र राजा हुआ। थ्रेस में लिसिमाकस, मिस्र में टालेमी और बैबिलोन के समीप के प्रदेश में सिल्यूकस का आधिपत्य रहा। यह संधि ३१९ ई० पूर्व में हुई, सिल्यूकस ने उधर के विग्रहों को कुछ शांत करके भारत की ओर देखा।

इसे भी वह ग्रीक-साम्राज्य का एक अंश समझता था। आरकोसिया, बैक्ट्रिया, जेड्रोसिया आदि विजय करते हुए उसने ३०६ ई० पूर्व में भारत पर

आक्रमण किया। चंद्रगुप्त उसी समय दिग्विजय करता हुआ पंजाब की ओर आ रहा था और उसने जब सुना कि ग्रीक लोग फिर भारत पर चढ़ाई कर रहे हैं, तब वह भी उन्हीं की ओर चल पड़ा। इस यात्रा में ग्रीक लोग लिखते हैं कि उनके पास ६,००,००० सैनिक थे, जिसमें ३०,००० घोड़े और ९,००० हाथी, बाकी पैदल थे।[1] इतिहासों से पता चलता है कि सिंधु-तट पर यह युद्ध हुआ।

सिल्यूकस सिंधु के उस तीर पर आ गया, मौर्य्य-सम्राट इस आक्रमण से अनभिज्ञ न थे। उसके प्रादेशिक शासक, जो कि उत्तर-पश्चिम प्रांत के थे, बराबर सिल्यूकस का गतिरोध करने के लिए प्रस्तुत रहते थे; पर अनेक उद्योग करने पर भी कपिशा आदि दुर्ग सिल्यूकस के हस्तगत हो ही गये। चंद्रगुप्त, जो कि सतलज के समीप से उसी ओर बराबर बढ़ रहा था, सिल्यूकस की क्षुद्र विजयों से घबड़ा कर बहुत शीघ्रता से तक्षशिला की ओर चल पड़ा। चंद्रगुप्त के बहुत थोड़े समय पहले ही सिल्यूकस सिंधु के इस पार उतर आया और तक्ष-शिला के दुर्ग पर चढ़ाई करने के उद्योग में था। तक्षशिला की सूबेदारी बहुत बड़ी थी। उसे विजय कर लेना सहज कार्य न था। सिल्यूकस अपनी रक्षा के लिए मिट्टी की खाईं बनवाने लगा।

चंद्रगुप्त अपनी विजयिनी सेना लेकर तक्षशिला में पहुँचा और मौर्य्य-पताका तक्षशिला-दुर्ग पर फहरा कर महाराज चंद्रगुप्त के आगमन की सूचना देने लगा। मौर्य्य-सेना ने आक्रमण करके ग्रीकों की मिट्टी की परिखा और उनका व्यूह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मौर्य्यों का वह भयानक आक्रमण उन लोगों ने बड़ी वीरता से सहन किया, ग्रीकों का कृत्रिम दुर्ग उनकी रक्षा कर रहा था; पर कब तक? चारों ओर से असंख्य मौर्य्य-सेना उस दुर्ग को घेरे थी। आपाततः उन्हें कृत्रिम दुर्ग छोड़ना पड़ा। इस बार भयानक लड़ाई आरंभ हुई। मौर्य्य-सेना का चंद्रगुप्त स्वयं नायक था। असीम उत्साह से मौर्य्यों ने आक्रमण करके ग्रीक-सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। लौटने की राह में बड़ी बाधा स्वरूप सिंधु नदी थी, इसलिए अपनी टूटी हुई सेना को एक जगह उन्हें एकत्र करना पड़ा। चंद्रगुप्त

---

१. The same King (Chandragupta) traversed India with an army of 6,00,000 men and conquered the whole.

(Plutarch, in H. A. S. Lit.)

की विजय हुई। इसी समय ग्रीक जनरलों में फिर खलबली मची हुई थी। इस कारण सिल्यूकस को शीघ्र उस ओर लौटना था। किसी ऐतिहासिक का मत है कि इसी से सिल्यूकस शीघ्र ही संधि कर लेने पर बाध्य हुआ। इस संधि में ग्रीक लोगों को चंद्रगुप्त और चाणक्य से सब ओर से दबना पड़ा।

इस संधि के समय में कुछ मतभेद हैं। किसी का मत हैं कि यह संधि ३०५ ई० पूर्व में हुई और कुछ लोग कहते हैं कि ३०३ ई० पूर्व में। सिल्यूकस ने जो ग्रीक-संधि की थी, वह ३११ ई० पूर्व में हुई, उसके बाद ही वह युद्ध-यात्रा के लिए चल पड़ा। अस्तु आरकोसिया, जेड्रोसिया और बैक्ट्रिया आदि विजय करते हुए भारत तक आने में पाँच वर्ष से विशेष समय नहीं लग सकता और इसी सें उस युद्ध का समय, जो कि चंद्रगुप्त से उससे हुआ था, ३०५ ई० पूर्व माना गया। तब ३०५ ई० पूर्व संधि का होना ठीक-सा जंचता है। संधि में चंद्रगुप्त भारतीय प्रदेशों के स्वामी हुए। अफगानिस्तान और मकराना भी चंद्रगुप्त को मिला और उसके साथ-ही-साथ कुल पंजाब और सौराष्ट्र पर चंद्रगुप्त का अधिकार हो गया। सिल्यूकस बहुत शीघ्र लौटने वाला था। ३०१ ई० पूर्व में होने वाले युद्ध के लिए उसे तैयार होना था, जिसमें कि Ipsus के मैदान में उसने अपने चिरशत्रु आंटिगोनस को मारा था। चंद्रगुप्त को इस ग्रीक-विप्लव ने बहुत सहायता दी और उसने इसी कारण मनमाने नियमों से संधि करने के लिए सिल्यूकस को बाध्य किया।[1]

पाटल आदि बंदर भी चंद्रगुप्त के अधीन हुए तथा काबुल में सिल्यूकस की ओर से एक राजदूत का रहना स्थिर हुआ। मेगस्थनीज[2] ही प्रथम राजदूत नियत हुआ। यह तो सब हुआ, पर नीति-चतुर सिल्यूकस ने एक और बुद्धिमानी का कार्य यह किया कि चंद्रगुप्त से अपनी सुंदरी कन्या का पाणिग्रहण करा दिया, जिसे चंद्रगुप्त ने स्वीकार कर लिया और दोनों राज्य एक संबंध-सूत्र में बँध गये जिस पर संतुष्ट होकर वीर चंद्रगुप्त ने ५०० हाथियों

---

१. हिरात, कंधार, काबुल, मकराना भी भारत के और प्रदेशों के साथ सिल्यूकस ने चंद्रगुप्त को दिया। V. A. Smith : E. H. of India.

२. मेगास्थनीज हिरात के क्षत्रप साइबर्टियस के पास रहा करता था।

की एक सेना सिल्यूकस को दी और अब चंद्रगुप्त का राज्य भारतवर्ष में सर्वत्र हो गया। रुद्रदामा के लेख से ज्ञात होता है कि पुष्पगुप्त[1] उस प्रदेश का शासक नियत किया गया था जो सौराष्ट्र और सिंध तथा राजपूताना तक था। अब चंद्रगुप्त के अधीन दो प्रादेशिक शासक और हुए, एक तक्षशिला में, दूसरा सौराष्ट्र में। इस तरह से अध्यवसाय का अवतार चंद्रगुप्त प्रबल पराक्रमांत राजा माना जाने लगा और ग्रीस, मिस्र, सीरिया इत्यादि के नरेश उसकी मित्रता में अपना गौरव समझते थे।

उत्तर में हिंदूकुश, दक्षिण में पांडुचेरी और कनानूर, पूर्व में आसाम और पश्चिम में सौराष्ट्र-समुद्र तथा वाल्हीक तक, चंद्रगुप्त के राज्य की सीमा निर्धारित की जा सकती है।

चंद्रगुप्त का शासन

गंगा और शोण के तट पर मौर्य्य-राजधानी—पाटलिपुत्र बसा था। पत्थर, ईंट तथा लकड़ी के बने हुए सुदृढ़ प्राचीर से दुर्ग परिवेष्टित था। नगर ८० स्टेडिया लंवा और ३० स्टेडिया चौड़ा था। दुर्ग में ६४ द्वार तथा ५७० बुर्ज थे। सौध-श्रेणी, राजमार्ग, सुविस्तृत पण्यवीथिका से नगर पूर्ण था और व्यापारियों की दूकानें अच्छे प्रकार से सुशोभित और सज्जित रहती थीं। भारतवर्ष की केंद्र नगरी कुसुमपुरी वास्तव में कुसुम-पूर्ण रहती थी। सुसज्जित तुरंगों पर धनाढ्य लोग प्रायः राजमार्ग में यातायात किया करते थे। गंगा के कूल में बने हुए सुंदर राज-मंदिर में चंद्रगुप्त रहता था और केवल तीन कामों के लिए महल के वाहर आता—

पहिला—प्रजा का आवेदन सुनना, जिसके लिए प्रतिदिन एक बार चंद्रगुप्त को विचारक का आसन ग्रहण करना पड़ता था। उस समय प्रायः तुरंग पर, जो आभूषणों से सजा हुआ रहता था, चंद्रगुप्त आरोहण करता और प्रतिदिन न्याय से प्रजा का शासन करता था।

---

१. पुष्पगुप्त ने ही उस पहाड़ी नदी का बाँध महाराज चंद्रगुप्त की आज्ञा से इसलिए बनाया कि खेती को बहुत लाभ होगा और उस बड़ी झील का नाम सुदर्शन रक्खा।

दूसरा—धर्मानुष्ठान बलिप्रदान करने के लिए, जो पर्व और उत्सव के उपलक्षों पर होते थे—मुक्तागुच्छ-शोभित कारु-कार्य खचित शिविका पर (जो कि संभवतः खुली हुई होती थी) चंद्रगुप्त आरोहण करता था। इससे ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त वैदिक धर्मावलंबी[1] था; क्योंकि वौद्ध और जैन ये ही धर्म उस समय वैदिक धर्म के प्रतिकूल प्रचलित थे। बलिप्रदानादि कर्म वैदिक ही होता रहा होगा।

तीसरा—मृगया खेलने के समय कुंजर पर सवारी निकलती। उस समय

---

१. मैसूर में मुद्रित अर्थशास्त्र चाणक्य का है और वह चंद्रगुप्त के लिए ही बनाया गया, यह एक प्रकार से सिद्ध हो चुका। उसका उल्लेख प्रायः दशकुमारचरित, कादंबरी तथा कामंदकीय आदि में मिलता है।

उसमें भी लिखा हैं कि "सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च। कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥" (७५ पृष्ठ अर्थशास्त्र) यह नरेंद्र शब्द चंद्रगुप्त के लिए प्रयोग किया गया है; उसमें चंद्रगुप्त के क्षत्रिय होने के तथा वेदधर्मावलंबी होने के बहुतसे प्रमाण मिलते हैं।

(तृतीये स्नानं भोजनं च सेवेत, स्वाध्यायं च कुर्वीत) ३७ पृष्ठ

(प्रतिष्ठितेहनि संध्यामुपासीत) ६८ पृष्ठ

'स्वाध्याय' और 'संध्या' से ही ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त वेदधर्मावलंबी था और यहाँ पर वह मुरा शूद्रावाली कल्पना भी कट जाती है क्योंकि चाणक्य जिसने लिखा है कि "शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा" (अर्थशास्त्र) वही यदि चंद्रगुप्त शूद्र होता तो उसके लिए 'स्वाध्याय' और 'संध्या' का उपदेश न देता। अस्तु, जहाँ तक देखा जाता है, चंद्रगुप्त वैदिक धर्मावलंबी ही था और यह भी प्रसिद्ध है कि अशोक ने ही बौद्धधर्म को State Religion बनाया। अर्थशास्त्र में वर्षा होने के लिए इंद्र की विशेष पूजा का उल्लेख है तथा शिव, स्कंद, कुबेर इत्यादि की पूजा प्रचलित थी, इनके देवालय नगर के मध्य में रखना आवश्यक समझा जाता था (२०६—५५ पृ०)

R. C. Dutt का भी मत है कि चंद्रगुप्त और उसका पुत्र बिंदुसार बौद्ध नहीं था।

चंद्रगुप्त स्त्री-गण से घिरा रहता था, जो धनुर्बाण आदि लिए उसके शरीर की रक्षा करतीं थीं।

उस समय राज-मार्ग डोरी से घिरा रहता था और कोई उसके भीतर नहीं जाने पाता था।

चंद्रगुप्त राजसभा में बैठता तो चार सेवक आबनूस के बेलनों से उसका अंग-संवाहन करते थे। यद्यपि चंद्रगुप्त प्रबल प्रतापी राजा था, पर वह षड्यंत्रों से शंकित होकर एक स्थान पर सदा नहीं रहता था जिसका कि मुद्राराक्षस में कुछ आभास मिलता है और यह मेगास्थनीज ने भी लिखा है।

हाथी, पहलवान, मेढ़ा और गैंड़ों की लड़ाई भी होती थी, जिसे राजा और प्रजा दोनों बड़े चाव से देखते थे। बहुत-से उत्सव भी नगर में हुआ करते थे। प्रहरी स्त्रियाँ, जो कि मोल ली जाती थीं, राजा के शरीर की सदा रक्षा करती थीं। वे रथों, घोड़ों और हाथियों पर राजा के साथ चलती थीं, राज-दरबार बहुत आडंबर से सजा रहता था, जो कि दर्शनीय रहता था। मेगास्थनीज इत्यादि ने इसका विवरण विस्तृत रूप से लिखा है। पाटलिपुत्र नगरी मौर्य्य-राजधानी होने से बहुत उन्नत अवस्था में थी।[1]

---

१. The district possesses special interest, both for Historian and Archaeologist. Patna city has been identified with Patliputra (See Plibothra of Megasthanes), which is suposed to have been founded six huudred years before the christian era by Raja Ajatshatru, a contemporary of Gautam the founder of the Budhist religion. (Imp. Gaz. of India. Vol XI, p. 14)

त्रिकांड शेष और हेमचंद्र-अभिधान में तथा मुद्राराक्षस में पाटलिपुत्र के दो और नाम पाये जाते हैं, एक कुसुमपुर और दूसरा पुष्पपुर। चीनी यात्री भी इन नामों से परिचित था। The pilgrimage of Fa-Hien में इसका विवरण है। हितोपदेश में लिखा है कि–"अस्ति भागीरथीतीरे पाटलिपुत्र नाम नगरम्।" पर ग्रीक लोगों ने उसे गंगा और हिरण्यवाह के तट पर होना लिखा है। इधर मुद्राराक्षस के "शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयः पास्यन्ति शतशः" से ज्ञात होता है कि वह शोण और गंगा के संगम पर था। पाटलिपुत्र कब बसा, इसका ठीक

राजधानी में नगर का शासन-प्रबंध भी छः विभागों में विभक्त था और उनके द्वारा पूर्णरूप से नगर का प्रबंध होता था। मेगास्थनीज़ लिखता है कि प्रथम विभाग उन कर्मचारियों का था, जो विक्रेय वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण और श्रम-जीवियों का वेतन तथा शिल्पियों का शुल्क-निर्धारण तथा निरीक्षण करता था। किसी शिल्पी के अंग-भंग करने से वही विभाग उस लोगों को दंड देता था। संभवतः यह विभाग म्युनिसिपैलिटी के बराबर था जो पाँच सदस्यों से कार्य-निर्वाह करता था।

द्वितीय विभाग विदेशियों के व्यवहार पर ध्यान रखता था। पीड़ित विदेशियों की सेवा करता था, उनके जाने के लिये वाहन आदि का आयोजन करना, उनके मरने पर उनकी संपत्ति की व्यवस्था करना और उन्हें जो हानि पहुँचावे, उसको कठोर दंड से दंडित करना उसका कार्य था। इससे ज्ञात होता है कि व्यापार अथवा अन्य कार्यों के लिए बहुत-से विदेशी कुसुमपुर में आया करते थे।

तृतीय विभाग प्रजा के मरण और जन्म की गणना करता था और उन पर कर निर्धारित करता था।

चतुर्थ विभाग व्यापार का निरीक्षण करता था और तुला तथा नाप का प्रबंध करता था।

पता नहीं चलता। कथा-सरित्सागर के मत से इसे पुत्रक नामक ब्राह्मण कुमार और पाटलि नाम्नी राजकुमारी ने अपने नामों से बसाया था, पर इसके लिए जो कथा है, वह विश्वास के योग्य नहीं है।

बौद्ध लोग लिखते हैं कि राजा अजातशत्रु के मंत्री वर्षकार ने पाटलि-ग्राम में एक दुर्ग बनवाया था जिसे देखकर महात्मा बुद्ध ने कहा था कि यह कुछ दिनों में एक प्रधान नगर हो जायगा। इधर वायुपुराण में लिखा है कि अजातशत्रु के पुत्र उदयाश्व ने यह नगर बसाया है—

स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयं।
गंगाया दक्षिणे कोणे चतुर्थाब्दे करिष्यति॥

अजातशत्रु और बुद्ध समकालीन थे। बुद्ध का निर्वाण ५५० ई० पूर्व में मान लें तो संभव है कि पाटलि-दुर्ग पचास वर्ष के बाद नगर-रूप में परिणत हो गया हो। अनुमान किया जाता है कि ५०० ई० पूर्व पाटलिपुत्र बसा था।

पंचम विभाग राजकीय कोष का था, जहाँ द्रव्य बनाये जाते और रक्षित रहते थे।

छठा विभाग राजकीय कर का था, जिसमें व्यापारियों के लाभ से दशमांश लिया जाता था और उन्हें खूब सावधानी से कार्य करना होता था, जो उस कर को न देता वह कठोर दंड से दंडित होता था।

राज्य के कर्मचारी लोग भूमि की नाप और उस पर कर-निर्धारण करते थे और जल की नहरों का समुचित प्रबंध करते थे जिससे सब कृषकों को सरलता होती थी। रुद्रदामा के गिरनारवाले लेख से प्रतीत होता है कि सुदर्शन-ह्रद महाराज-चंद्रगुप्त के राजत्व-काल में बना था। इससे ज्ञात होता है कि राज्य में सर्वत्र जल का प्रबंध रहता था तथा कृषकों के लाभ पर विशेष ध्यान रहता था।

राज्य के प्रत्येक प्रांत से समाचार संग्रह करने वाले सत्य समाचार चंद्रगुप्त को देते थे। चाणक्य-सा बुद्धिमान् मंत्री चंद्रगुप्त को बड़े भाग्य से मिला था और उसकी विद्वत्ता ऊपर लिखित प्रबंधों से ज्ञात होती है। युद्धादि के समय में भी भूमि बराबर जोती जाती थी, उसके लिए कोई बाधा नहीं थी।

राजकीय सेना में, जिसे राजा अपने व्यय से रखते थे, रणतरी २००० थी।[1] चार घोड़ों से जुते ८००० रथ रहते थे, जिस पर एक रथी और दो योद्धा रहते थे। ४,००,००० पैदल असिचर्मधारी, धनुर्बाणधारी थे। ३०,००० अश्वारोही थे। ९०,००० रण-कुंजर थे जिन पर महावत को लेकर ४ योद्धा रहते और युद्ध के भारवाही अश्वों के सेवक तथा अन्यान्य सामग्री ढोनेवालों को मिलाकर ६,००,००० मनुष्यों की भीड़-भाड़ उस सेना में थी और उस सेना-विभाग के प्रत्येक (६) अनुभागों में पाँच सदस्य रहते थे।

प्रथम अनुभाग नौसेना का था। दूसरा अनुभाग युद्ध-संबंधी भोजन, वस्त्र, छकड़े, बाजा, सेवक और जानवरों के चारा का प्रबंध करता था। तीसरे के

---

१. "नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयात् भूमि लाभः श्रेयान् नदी दुर्गेहि हस्तिस्तम्भ संक्रम सेतुबन्ध नौभिस्साध्यम्" —अर्थशास्त्र २९२

"नावध्यक्षक समुद्रसंगाननदीसुखतर प्रचारान् देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानीयादिष्ववेक्षेत।" —अर्थशास्त्र १२६

अधीन पैदल सैनिक रहते थे। चौथा अनुभाग अश्वारोहियों का था। पाँचवाँ, युद्धरथों की देखभाल करता था। छठा, युद्ध के हाथियों का प्रबंध करता था।

इस प्रकार सुशिक्षित सेना और अत्युत्तम प्रबंध से चंद्रगुप्त ने २४ वर्ष तक भारत-भूमि का शासन किया। भारतवर्ष के इतिहास में मौर्य्य-युग का एक स्मरणीय समय छोड़कर २९७ ई० पूर्व में मानवलीला संवरण करके चंद्रगुप्त ने अपने सुयोग्य पुत्र के हाथ में राज-सिंहासन दिया।

सम्राट् चंद्रगुप्त दृढ़ शासक, विनीत, व्यवहारचतुर, मेधावी, उदार, नैतिक, सद्गुणसंपन्न तथा भारतभूमि के सपूतों में से एक रत्न था। बौद्ध-ग्रंथ, अर्थकथा और वायुपुराण से चंद्रगुप्त का शासन २४ वर्षों का ज्ञात होता है—जो ३२१ ई० पूर्व से २९७ तक ठीक प्रतीत होता है।

चंद्रगुप्त के समय का भारतवर्ष

भारतभूमि अतीव उर्वरा थी, कृत्रिम जल-स्रोत जो कि राजकीय प्रबंध से बने थे, खेती के लिए बहुत लाभदायक थे। प्राकृतिक बड़ी-बड़ी नदियाँ अपने तट के भू-भाग को सदैव उर्वर बनाती थीं। एक वर्ष में दो बार अन्न काटे जाते थे। यदि किसी कारण से एक फसल ठीक न हुई, तो दूसरी अवश्य इतनी होती कि भारतवर्ष को अकाल का सामना नहीं करना पड़ता था। कृषक लोग बहुत शांतिप्रिय होते थे। युद्ध आदि के समय में भी कृषक लोग आनंद से हल चलाते थे। उत्पन्न हुए अन्न का चतुर्थांश राजकोष में जाता था। खेती की उन्नति की ओर राजा का भी विशेष ध्यान रहता था। कृषक लोग आनंद में अपना जीवन व्यतीत करते थे।

दलदलों में अथवा नदियों के तटस्थ भू-भाग में भी फल-फूल बहुतायत से उगते थे और ये सुस्वादु तथा गुणदायक होते थे।

जानवर भी यहाँ अनेक प्रकार के यूनानियों ने देखे थे। वे कहते हैं कि चौपाये यहाँ जितने सुंदर और बलिष्ठ थे, वैसे अन्यत्र नहीं। यहाँ के सुंदर बैलों को सिकंदर ने यूनान भी भेजा था। जानवरों में जंगली और पालतू सब प्रकार के यहाँ मिलते थे। पक्षी भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों में बहुत प्रकार के थे, जो अपने घोंसलों में बैठ कर भारत के सुस्वादु फल खाकर कमनीय कंठ से उसकी जय

मनाते थे। धातु भी यहाँ प्रायः सब उत्पन्न होते थे। सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा और जस्ता इत्यादि यहाँ की खानों में से निकलते और उनसे अनेक प्रकार के उपयोगी अस्त्र-शस्त्र, साज-आभूषण इत्यादि प्रस्तुत होते थे। शिल्प यहाँ का बहुत उन्नत अवस्था में था, क्योंकि उसके व्यवसायी सब प्रकार के कर से मुक्त होते थे। यही नहीं, उनको राजा से सहायता भी मिलती थी जिससे कि वे स्वछंद होकर अपना कार्य करें। क्या विधि-विडंबना है, उसी भारत के शिल्प की—जहाँ के बनाए आडंबर तथा शिल्प की वस्तुओं को देखकर यूनानियों ने कहा था कि 'भारत की राजधानी पाटलिपुत्र को देखकर फारस की राजधानी कुछ भी नहीं प्रतीत होती।'

शिल्पकार राज-कर से मुक्त होने के कारण राजा और प्रजा दोनों के हितकारी यंत्र बनाता था, जिससे कार्यों में सुगमता होती थी।

प्लिनी कहता है कि 'भारतवर्ष में मनुष्य पाँच वर्ग के हैं—एक जो लोग राज-सभा में कार्य करते हैं, दूसरे सिपाही, तीसरे व्यापारी, चौथे कृषक और एक पाँचवाँ वर्ग भी है जो कि दार्शनिक कहलाता है।'

पहले वर्ग के लोग संभवतः ब्राह्मण थे जो कि नीतिज्ञ होकर राजसभा में धर्माधिकार का कार्य करते थे।

सिपाही लोग अवश्य क्षत्रिय ही थे। व्यापारियों का वणिक्-संप्रदाय था। कृषक लोग शूद्र अथवा दास थे, पर वह दासत्व सुसभ्य लोगों की गुलामी नहीं थी।

पाँचवाँ वर्ग उन ब्राह्मणों का था, जो संसार से एक प्रकार से अलग होकर ईश्वराराधन में अपना दिन बिताते तथा सदुपदेश देकर संसारी लोगों को आनंदित करते थे। वे स्वयं यज्ञ करते और दूसरों का यज्ञ कराते थे, संभवतः वे ही मनुष्यों का भविष्य कहते थे और यदि उनका भविष्य-कथन सत्य न होता तो वे फिर उस सम्मान की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे।

भारतवासियों का व्यवहार बहुत सरल था। यज्ञ को छोड़कर वे मदिरा और कभी नहीं पीते थे। लोगों का व्यय इतना परिमित था कि वे सूद पर ऋण कभी नहीं लेते थे। भोजन वे लोग नियत में तथा अकेले ही करते थे। व्यवहार के वे लोग बहुत सच्चे होते थे, झूठ से उन लोगों को घृणा थी। बारीक मलमल

के कामदार कपड़े पहन कर वे चलते थे। उन्हें सौंदर्य्य का इतना ध्यान रहता था कि नौकर उन्हें छाता लगाकर चलता था। आपस में मुकदमे बहुत कम होते थे।

विवाह एक जोड़ी बैल देकर होता था और विशेष उत्सवों में वे आडंबर से कार्य करते थे। तात्पर्य यह है कि महाराज चक्रवर्त्ती चंद्रगुप्त के शासन में प्रजा शांतिपूर्वक निवास करती थी और सब लोग आनंद से अपना जीवन व्यतीत करते थे।

शिल्प बाणिज्य की अच्छी उन्नति थी। राजा और प्रजा में विशेष सद्भाव था, राजा अपनी प्रजा के हित-साधन में सदैव तत्पर रहता था, प्रजा भी अपनी भक्ति से राजा को संतुष्ट रखती थी। चक्रव..। चंद्रगुप्त का शासन-काल भारत का स्वर्णयुग था।

चाणक्य

इनके बहुत-से नाम मिलते हैं—विष्णुगुप्त, कौटिल्य, चाणक्य, वात्स्यायन द्रामिल इत्यादि इनके प्रसिद्ध नाम हैं। भारतीय पर्य्यटक इन्हें दक्षिण देशीय कोंकणस्थ ब्राह्मण लिखते हैं और इसके प्रमाण में वे लिखते हैं कि दक्षिण देशीय ब्राह्मण प्रायः कूटनीतिपटु होते हैं। चाणक्य की कथाओं में मिलता है कि वह श्यामवर्ण के पुरुष तथा कुरूप थे, क्योंकि इसी कारण से वह नंद की सभा से श्राद्ध के समय उठाये गये। जैनियों के मत से चाणक्य गोल्ल-ग्रामवासी थे और जैनधर्मावलंबी थे। वह नंद द्वारा अपमानित होने पर नंदवंश का नाश करने की प्रतिज्ञा करके बाहर निकल पड़े और चंद्रगुप्त से मिलकर उसे कौशल से नंद-राज्य का स्वामी बना दिया।

बौद्ध लोग उन्हें तक्षशिला निवासी ब्राह्मण बतलाते हैं और कहते हैं कि घननंद को मारकर चाणक्य ने ही चंद्रगुप्त को राज्य दिया। पुराणों में मिलता है, "कौटिल्यो नाम ब्राह्मणः समुद्धरिष्यसि।" अस्तु। सबकी कथाओं का अनुमान करने से जाना जाता है कि चाणक्य ही चंद्रगुप्त की उन्नति के मूल हैं।

चाणक्य के बारे में बारे जस्टिस तैलंग लिखते हैं—

Chanakya is represented as a clear headed self confident, in triguing, hard politician with ultimate end of his ambition thoro-

ughly well determind and directing all his clear headedness and intrigue to the accomplishment of that end."

V. A. Smith लिखते हैं "Nor is there any reason to discredit the statements that the userper was attacked by a confederecy of the northern powers, including Kashmir and that the attack failed owing to the Maciavellian intrigues of Chandragupta's Brahman advisor, who is variously named—Chanakya.

कामंदकीय नीतिसार में लिखा है—

यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः ।
पपात मूलतः श्रीमान्सुपर्वानन्दपर्वतः ।।
एकाकी मंत्रशक्त्या यः शक्तः शक्तिधरोपमः ।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम् ।।
नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः ।
य उद्दध्रेनमस्तस्यै विष्णुगुप्ताय वेधसे ।।

चंद्रगुप्त का प्रधान सहायक—मंत्री चाणक्य ही था। पर यह ठीक नहीं ज्ञात होता कि वह कहाँ का रहने वाला था। जैनियों के इतिहास से बौद्धों के इतिहास को लोग प्रामाणिक मानते हैं। हेमचंद्र ने जिस भाव से चाणक्य का चित्र अंकित किया है वह प्रायः अस्वाभाविक घटनाओं से पूर्ण है।

जैन-ग्रंथों और प्रबंधों में प्रायः सभी को जैन-धर्म में किसी-न-किसी प्रकार आश्रय लेते हुए दिखाया गया है। यही बात चंद्रगुप्त के संबंध में भी है। श्रवणबेलगोल वाले लेख के द्वारा जो किसी जैनमुनि का है चंद्रगुप्त को राज्य छोड़कर यति-धर्म ग्रहण करने का प्रमाण दिया जाता है। अनेक ने तो यहाँ तक कह डाला है कि उसका साथी चाणक्य भी जैन था।

अर्थशास्त्र के मंगलाचरण का प्रमाण देकर यह कहा जाता है कि (नमः शुक्रवृहस्पतिभ्यां) ऐसा मंगलाचरण आचार्यों के प्रति कृतज्ञतासूचक वैदिक हिंदुओं का नहीं हो सकता, क्योंकि वे प्रायः ईश्वर को नमस्कार करते हैं। किंतु कामसूत्र के मंगलाचरण के संबंध में क्या होगा, जिसका मंगलाचरण है "नमो धर्मार्थकामेभ्यो।" इसमें भी तो ईश्वर की वंदना नहीं की गई है। तो क्या वात्स्यायन भी जैन थे? इसलिए यह सब बातें व्यर्थ हैं। जैनों के अतिरिक्त

जिन लोगों का चरित्र उन लोगों में लिखा है, उसे अद्भुत, कुत्सित और अप्रासंगिक बना डाला है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ भारतीय चरित्रों को जैन ढाँचे में ढालने का जैन-संस्कृत-साहित्य द्वारा असफल प्रयत्न किया गया है। यहाँ तक उन लोगों ने लिख डाला है कि चंद्रगुप्त को भूख लगी तो चाणक्य ने एक ब्राह्मण के पेट से गुलगुले निकाल कर खिलाये। ऐसी अनेक आश्चर्यजनक कपोल-कल्पनाओं के आधार पर चंद्रगुप्त और चाणक्य को जैन बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

इसलिए बौद्धों के विवरण की ओर ही ध्यान आकर्षित होता है। बौद्ध लोग कहते हैं कि 'चाणक्य तक्षशिला-निवासी थे' और इधर हम देखते हैं कि तक्षशिला[1] में उस समय विद्यालय था जहाँ कि पाणिनि, जीवक आदि पढ़ चुके थे। अस्तु, संभवतः चाणक्य, जैसा कि बौद्ध लोग कहते हैं, तक्षशिला में रहते या पढ़ते थे। जब हम चंद्रगुप्त की सहायक सेना की ओर ध्यान देते हैं, तो यह प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि चाणक्य का तक्षशिला से अवश्य संबंध था; क्योंकि चाणक्य अवश्य उनसे परिचित थे, नहीं तो वे लोग चंद्रगुप्त को क्या जानते! हमारा यही अनुमान है कि चाणक्य मगध के ब्राह्मण थे। क्योंकि मगध में नंद की सभा में वे अपमानित हुए थे। उनकी जन्मभूमि पाटलिपुत्र ही थी।

पाटलिपुत्र इस समय प्रधान नगरी थी, चाणक्य तक्षशिला में विद्याध्ययन करके वहाँ से लौट आये। किसी कारणवश वह राजा पर कुपित हो गये, जिसके बारे में प्रायः सब विवरण मिलते-जुलते हैं। वह ब्राह्मण भी प्रतिज्ञा करके उठा कि आज से—जब तक नंदवंश का नाश न कर लूँगा—शिखा न बाँधूँगा और फिर चंद्रगुप्त को मिलाकर जो-जो कार्य उन्होंने किये, वह पाठकों को ज्ञात ही है।

जहाँ तक ज्ञात होता है, चाणक्य वेदधर्मावलंबी, कूटनीतिज्ञ, प्रखर प्रतिभावान और हठी थे।

---

१. कनिंगहम साहब वर्तमान शाह देहरी के समीप में तक्षशिला का होना मानते हैं। रामचंद्र के भाई भरत के दो पुत्रों के नाम से उसी ओर दो नगरियाँ बसायी गयीं थी, तक्ष के नाम से तक्षशिला और पुष्कल के नाम से पुष्कलावती। तक्षशिला का विद्यालय उस समय भारत के प्रसिद्ध विद्यालयों में से एक था।

हेमचंद्र के अभिधान में पक्षिलस्वामी और चाणक्य एक ही व्यक्ति के नाम हैं। चाणक्य का ही नाम वात्स्यायन था, चंद्रगुप्त की राजसभा में इनका रहना प्रमाणित है।

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशेप्रकीर्त्तिता॥

(वात्स्यायन-न्यायभाष्य)

अर्थशास्त्र में यही श्लोक अविकल मिलता है, केवल इसका चतुर्थपाद बदला दिखाई देता है जैसे 'विद्योद्देशे प्रकीर्त्तिता' की जगह शश्वदान्वीक्षिकीमता" (अ० शा० पृ० ३) इससे भी अनुमित होता है कि वात्स्यायन और चाणक्य एक ही थे।

उनकी नीति अनोखी होती थी और उनमें अलौकिक क्षमता थी, नीतिशास्त्र के आचार्यों में उनकी गणना है। उनके द्वारा बनाये ये ग्रंथ बतलाये जाते हैं—चाणक्यनीति, अर्थशास्त्र, कामसूत्र और न्यायभाष्य।

यह अवश्य कहना होगा कि वह मनुष्य बड़ा प्रतिभाशाली था जिसके बुद्धि-बल द्वारा, प्रशंसित राज-कार्य-क्रम से चंद्रगुप्त ने भारत का साम्राज्य स्थापित करके उस पर राज्य किया। अर्थशास्त्र में स्वयं चाणक्य ने लिखा है—

येन शस्त्रं च शास्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

काशी
संवत् १९६६

जयशङ्कर प्रसाद

पात्र-परिचय

●

चाणक्य (विष्णुगुप्त)	: मौर्य्य साम्राज्य का निर्माता
चंद्रगुप्त	: मौर्य्य-सम्राट्
नंद	: मगध-सम्राट्
राक्षस	: मगध का अमात्य
वररुचि (कात्यायन)	: मगध का अमात्य
शकटार	: मगध का मंत्री
आंभीक	: तक्षशिला का राजकुमार
सिंहरण	: मालव गणमुख्य का कुमार
पर्वतेश्वर	: पंजाब का राजा (पोरस)
सिकंदर	: ग्रीक विजेता
फिलिप्स	: सिकंदर का क्षत्रप
मौर्य्य-सेनापति	: चंद्रगुप्त का पिता
एनीसाक्रोटीज	: सिकंदर का सहचर
देवबल, नागदत्त, गणमुख्य	: मालव गणतंत्र के पदाधिकारी
साइबर्टियस, मेगास्थनीज	: यवन दूत
गांधार-नरेश	: आंभीक का पिता
सिल्यूकस	: सिकंदर का सेनापति
दाण्ड्यायन	: एक तपस्वी

●

अलका	: तक्षशिला की राजकुमारी
सुवासिनी	: शकटार की कन्या
कल्याणी	: मगध राजकुमारी
नीला, लीला	: कल्याणी की सहेलियाँ
मालविका	: सिंधु देश की कुमारी
कार्नेलिया	: सिल्यूकस की कन्या
मौर्य्य-पत्नी	: चंद्रगुप्त की माता
एलिस	: कार्नेलिया की सहेली

●

प्रथम अंक

१

(तक्षशिला के गुरुकुल का मठ/चाणक्य और सिंहरण)

चाणक्य : सौम्य, कुलपति ने मुझे गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। केवल तुम्हीं लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए ठहरा था, क्योंकि इस वर्ष के भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र का पाठ पढ़ाकर मुझ अकिंचन को गुरु-दक्षिणा चुका देनी थी।

सिंहरण : आर्य्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं जि नी अस्त्रशास्त्र की। इसीलिए मैं पाठ में पिछड़ा रहा, क्षमाप्रार्थी हूँ।

चाणक्य : अच्छा, अब तुम मालव जाकर क्या करोगे ?

सिंहरण : अभी तो मैं मालव नहीं जाता। मुझे तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है।

चाणक्य : मुझे प्रसन्नता होती है कि तुम्हारा अर्थशास्त्र पढ़ना सफल होगा। क्या तुम जानते हो कि यवनों के दूत यहाँ क्यों आये हैं ?

सिंहरण : मैं उसे जानने की चेष्टा कर रहा हूँ—आर्य्यावर्त का भविष्य लिखने के लिये कुचक्र और प्रतारणा की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खंड-राज्य द्वेष से जर्ज्जर हैं। शीघ्र भयानक विस्फोट होगा !

(सहसा आंभीक और अलका का प्रवेश)

आंभीक : कैसा विस्फोट ? युवक, तुम कौन हो ?

सिंहरण : एक मालव।

आंभीक : नहीं, विशेष परिचय की आवश्यकता है।

सिंहरण : तक्षशिला गुरुकुल का एक छात्र।

आंभीक : देखता हूँ कि तुम दुश्शील भी हो।

सिंहरण : कदापि नहीं राजकुमार ! विनम्रता के साथ निर्भीक होना मालवों का वंशानुगत चरित्र है, और मुझे तो तक्षशिला की शिक्षा का भी गर्व है।

आंभीक : परंतु तुम किसी विस्फोट की बातें—अभी कर रहे थे। और चाणक्य—क्या तुम्हारा भी इसमें कुछ हाथ है ?
(चाणक्य को चुप देखकर क्रोध से) बोलो ब्राह्मण—मेरे राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर मेरे ही विरुद्ध कुचक्रों का सृजन !

चाणक्य : राजकुमार, ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है; स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी, स्वेच्छा से इन माया-स्तूपों को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।

आंभीक : वह काल्पनिक महत्त्व—मायाजाल है, तुम्हारे प्रत्यक्ष नीच-कर्म उस पर परदा नहीं डाल सकते।

चाणक्य : सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय ! इसी से दस्यु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य्य-जाति पतन के कगार पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है।

आंभीक : और तुम धक्का देने का कुचक्र विद्यार्थियों को सिखा रहे हो ?

सिंहरण : विद्यार्थी और कुचक्र ! असंभव—यह तो वे ही कर सकते हैं जिनके हाथ में अधिकार हो—जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल और सुमेरु से भी कठोर हो, जो यवनों की मित्रता के लिए स्वयं वाल्हीक तक....

आंभीक : बस-बस, दुर्धर्ष युवक ! बता, तेरा अभिप्राय क्या है ?

सिंहरण : कुछ नहीं।

आंभीक : नहीं, बताना होगा। मेरी आज्ञा है।

सिंहरण : गुरुकुल में केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य होती हैं, अन्य आज्ञाएँ अवज्ञा के कान से सुनी जाती हैं राजकुमार !

अलका : भाई ! इस वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छंद हृदय में कितना बलवान् वेग है ! यह अवज्ञा भी स्पृहणीय है। जाने दो।

आंभीक : चुप रहो अलका, यह ऐसी बात नहीं है जो यों ही उड़ा दी जाय। इसमे कुछ रहस्य है। (चाणक्य चुपचाप मुस्कराता है)

सिंहरण : हाँ-हाँ, रहस्य है ! यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल-स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्य्यावर्त्त की सुख-रजनी की शांति-निद्रा में उत्तरापथ की अर्गला—धीरे से खोल देने का रहस्य है ! क्यों राजकुमार—संभवतः तक्षशिलाधीश वाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्घाटन करने गये थे ?

आंभीक : (पैर पटक कर) ओह, असह्य ! युवक तुम बंदी हो।

सिंहरण : कदापि नहीं, मालव कदापि बंदी नहीं हो सकता।
(आंभीक तलवार खींचता है)

चंद्रगुप्त : (सहसा प्रवेश करके) ठीक है, प्रत्येक निरपराध आर्य्य स्वतंत्र है, उसे कोई बंदी नहीं बना सकता। यह क्या राजकुमार ! खड्ग को कोष में स्थान नहीं है क्या ?

सिंहरण : (व्यंग से) वह तो स्वर्ण से भर गया है।

आंभीक : तो तुम सब कुचक्र में लिप्त हो। और इस मालव को तो मेरा अपमान करने का प्रतिफल—मृत्युदंड अवश्य भोगना पड़ेगा।

चंद्रगुप्त : क्यों, क्या वह एक निस्सहाय छात्र तुम्हारे राज्य में शिक्षा पाता है और तुम एक राजकुमार हो—बस इसीलिए ? (आंभीक तलवार चलाता है / चंद्रगुप्त अपनी तलवार पर उसे रोकता है / आंभीक की तलवार छूट जाती है / वह निस्सहाय होकर चंद्रगुप्त के आक्रमण की प्रतीक्षा करता है / बीच में अलका आ जाती है)

सिंहरण : वीर चंद्रगुप्त, बस ! जाओ राजकुमार, यहाँ कोई कुचक्र नहीं है, अपने कुचक्रों से अपनी रक्षा स्वयं करो।

चाणक्य : राजकुमारी, मैं गुरुकुल का अधिकारी हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम क्रोधाभिभूत कुमार को लिवा जाओ। गुरुकुल में शस्त्रों का प्रयोग शिक्षा के लिये होता है, द्वंद्व-युद्ध के लिये नहीं। विश्वास रखना इस दुर्व्यवहार का समाचार महाराज के कानों तक न पहुँचेगा।

अलका : ऐसा ही हो। चलो भाई ! (क्षुब्ध आंभीक उसके साथ जाता है)

चाणक्य : (चंद्रगुप्त से) तुम्हारा पाठ समाप्त हो चुका है. और आज का यह कांड—असाधारण है। मेरी सम्मति है कि तुम शीघ्र तक्षशिला का परित्याग कर दो। और सिंहरण, तुम भी।

चंद्रगुप्त : आर्य्य, हम मागध हैं और यह मालव। अच्छा होता कि यहीं गुरुकुल में हम लोग शस्त्र की परीक्षा भी देते।

चाणक्य : क्या यही मेरी शिक्षा है? बालकों की-सी चपलता दिखलाने का यह स्थल नहीं। तुम लोगों को समय पर शस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा। परंतु अकारण रक्तपात नीति-विरुद्ध है।

चंद्रगुप्त : आर्य्य! संसार-भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म-सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है। सिंहरण मेरा आत्मीय है, मित्र है, उसका मान मेरा ही मान है।

चाणक्य : देखूँगा कि इस आत्म-सम्मान की भविष्य-परीक्षा में तुम कहाँ तक उत्तीर्ण होते हो!

सिंहरण : आपके आशीर्वाद से हम लोग अवश्य सफल होंगे।

चाणक्य : तुम मालव हो और यह मागध, यहीं तुम्हारे मान का अवसान है न? परंतु आत्म-सम्मान इतने से ही संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्य्यावर्त्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्य्यावर्त्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे? आज जिस व्यंग को लेकर इतनी घटना हो गई है, वह बात भावी गांधार-नरेश आंभीक के हृदय में शल्य के समान चुभ गई है। पंचनद-नरेश पर्वतेश्वर के विरोध के कारण यह क्षुद्रहृदय आंभीक यवनों का स्वागत करेगा और आर्य्यावर्त्त का सर्वनाश होगा।

चंद्रगुप्त : गुरुदेव, विश्वास रखिये, यह सब कुछ नहीं होने पावेगा। यह चंद्रगुप्त आपके चरणों की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।

चाणक्य : तुम्हारी प्रतिज्ञा अचल हो। परंतु इसके लिए पहले तुम मगध जाकर साधन-संपन्न बनो। यहाँ समय बिताने का प्रयोजन नहीं। मैं भी पंचनद-नरेश से मिलता हुआ मगध आऊँगा और सिंहरण, तुम भी सावधान!

सिंहरण : आर्य्य, आपका आशीर्वाद ही मेरा रक्षक है—
(चंद्रगुप्त और चाणक्य का प्रस्थान) एक अग्निमय गंधक का स्रोत आर्य्यावर्त्त के लौह-अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चंचला रण-लक्ष्मी इंद्र-धनुष-सी विजय-माल हाथ में लिए उस सुंदर नील-लोहित प्रलय-जलद में विचरण करेगी और वीर-हृदय मयूर-से नाचेंगे ! तब आओ देवि ! स्वागत !! (अलका का प्रवेश)

अलका : मालव वीर, अभी तुमने तक्षशिला का परित्याग नहीं किया ?

सिंहरण : क्यों देवि ! क्या मैं यहाँ रहने के उपयुक्त नहीं हूँ ?

अलका : नहीं मैं तुम्हारी सुख-शांति के लिए चिंतित हूँ ? भाई ने तुम्हारा अपमान किया है पर वह अकारण न था ! जिसका जो मार्ग है उस पर वह चलेगा। तुमने अनधिकार चेष्टा की थी ! देखती हूँ कि प्रायः मनुष्य दूसरों को अपने मार्ग पर चलाने के लिए रुक जाता है, और अपना चलना बंद कर देता है।

सिंहरण : परंतु भद्रे, जीवन-काल में भिन्न-भिन्न मार्गों की परीक्षा करते हुए जो ठहरता हुआ चलता है, वह दूसरों को लाभ ही पहुँचाता है। यह कष्टदायक तो है, परंतु निष्फल नहीं।

अलका : किंतु मनुष्य को अपने जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिये।

सिंहरण : मानव कब दानव से भी दुर्दांत, पशु से भी बर्ब्बर और पत्थर से भी कठोर—करुणा के लिए निरवकाश हृदयवाला हो जायगा, नहीं जाना जा सकता। अतीत सुखों के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वर्त्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा, फिर चिंता किस बात की ?

अलका : मालव, तुम्हारे देश के लिए तुम्हारा जीवन अमूल्य है, और वही यहाँ आपत्ति में है।

सिंहरण : राजकुमारी, इस अनुकंपा के लिए कृतज्ञ हुआ। परंतु मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है। यही क्या, समग्र आर्य्यावर्त्त है इसलिए मैं—

अलका : (आश्चर्य्य से) क्या कहते हो ?

सिंहरण : गांधार आर्य्यावर्त्त से भिन्न नहीं है, इसलिए उसके पतन को मैं अपना अपमान समझता हूँ।

अलका : (निश्वास लेकर) इसका मैं अनुभव कर रही हूँ। परंतु जिस देश में ऐसे वीर युवक हों, उसका पतन असंभव है। मालव वीर, तुम्हारे मनोबल में स्वतंत्रता है और तुम्हारी दृढ़ भुजाओं में आर्य्यावर्त्त के रक्षण की शक्ति है, तुम्हें सुरक्षित रहना चाहिये। मैं भी आर्य्यावर्त्त की बालिका हूँ तुमसे अनुरोध करती हूँ कि तुम शीघ्र गांधार छोड़ दो। मैं आंभीक को शक्ति भर पतन से रोकूँगी, परंतु उसके न मानने पर तुम्हारी आवश्यकता होगी। जाओ वीर!

सिंहरण : अच्छा राजकुमारी तुम्हारे स्नेहानुरोध से मैं जाने के लिए बाध्य हो रहा हूँ। शीघ्र ही चला जाऊँगा देवि! किंतु यदि किसी प्रकार सिंधु की प्रखर धारा को यवन सेना न पार कर सकती····

अलका : मैं चेष्टा करूँगी वीर, तुम्हारा नाम ?

सिंहरण : मालवगण के राष्ट्रपति का पुत्र सिंहरण।

अलका : अच्छा, फिर कभी—(परस्पर देखते हुए प्रस्थान)

२

(मगध-सम्राट् का विलास-कानन विलासी युवक और युवतियों का विहार)

नंद : (प्रवेश करके) आज वसंत-उत्सव है क्या ?

एक युवक : जय हो देव! आपकी आज्ञा से कुसुमपुर के नागरिकों ने आयोजन किया है।

नंद : परंतु मदिरा का तो तुम्हारे समाज में अभाव है, फिर आमोद कैसा ?—(एक युवती से)—देखो-देखो—तुम सुंदरी हो परंतु तुम्हारे यौवन का विभ्रम अभी संकोच की अर्गला से जकड़ा हुआ है! तुम्हारी आँखों में काम का सुकुमार संकेत नहीं, अनुराग की लाली नहीं! फिर कैसा प्रमोद!

एक युवती : हम लोग तो निमंत्रित नागरिक हैं देव! इसका दायित्व तो निमंत्रण देने वाले पर है।

नंद : वाह, यह अच्छा उलाहना रहा ! (अनुचर से) मूर्ख ! अभी और कुछ सुनवावेगा ? तू नहीं जानता कि मैं ब्रह्मास्त्र से अधिक इन सुंदरियों के कुटिल कटाक्षों से डरता हूँ ! ले आ—शीघ्र ले आ—नागरिकों पर तो मैं राज्य करता हूँ, परंतु मेरी मगध की नागरिकाओं—कुसुमपुर की काम-कामिनियों का शासन—मेरे ऊपर है। श्रीमति, सबसे कह दो—नागरिक नंद, कुसुमपुर के कमनीय कुसुमों से अपराध के लिए क्षमा माँगता है और आज के दिन वह तुम लोगों का कृतज्ञ सहचर-मात्र है।

(अनुचर लोग प्रत्येक कुंज में मदिरा-कलश ओर चषक पहुँचाते हैं / राक्षस और सुवासिनी का प्रवेश, पीछे-पीछे कुछ नागरिक)

राक्षस : सुवासिनी ! एक पात्र और, चलो इस कुंज में।

सुवासिनी : नहीं, अब मैं न सँभल सकूँगी।

राक्षस : फिर इन लोगों से कैसे पीछा छूटेगा ?

सुवासिनी : मेरी एक इच्छा है।

एक नागरिक: क्या इच्छा है सुवासिनी, हम लोग अनुचर हैं। केवल एक सुंदर अलाप की, एक कोमल मूर्च्छना की लालसा है।

सुवासिनी : अच्छा तो अभिनय के साथ।

सब : (उल्लास से)—सुंदरियों की रानी सुवासिनी की जय !

सुवासिनी : परंतु राक्षस को कच का अभिनय करना पड़ेगा।

एक नागरिक : और तुम देवयानी, क्यों ? यही न ? राक्षस सचमुच राक्षस होगा, यदि इसमें आनाकानी करे—तो····चलो राक्षस !

दूसरा : नहीं मूर्ख ! आर्य्य राक्षस कह, इतने बड़े कला-कुशल विद्वान् को किस प्रकार संबोधित करना चाहिये, तू इतना भी नहीं जानता। आर्य्य राक्षस ! इन नागरिकों की प्रार्थना से इस कष्ट को स्वीकार कीजिये !

(राक्षस उपयुक्त स्थान ग्रहण करता है / कुछ मूक अभिनय, फिर उसके बाद सुवासिनी का भाव सहित गान)

तुम कनक किरन के अंतराल में लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन, रस कन ढरते
हे लाज भरे सौंदर्य्य ! बता दो—मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों में
कल-कल ध्वनि की गुंजारों में ?
मधुसरिता-सी यह हँसी तरल अपनी—पीते रहते हो क्यों ?
वेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंधा की कली खिली—
अब सांध्य-मलय आकुलित-दुकूल-कलित हो-यों छिपते हो क्यो ?
('साधु-साधु' की ध्वनि)

नंद : उस अभिनेत्री को यहाँ बुलाओ ।
(सुवासिनी नंद के समीप आकर प्रणत होती है)
तुम्हारा अभिनय तो अभिनय नहीं हुआ !

नागरिक : अपितु वास्तविक घटना, जैसी देखने में आवे, वैसी ही ।

नंद : तुम बड़े कुशल हो—ठीक कहा ।

सुवासिनी : तो मुझे दंड मिले । आज्ञा कीजिये देव !

नंद : मेरे साथ एक पात्र ।

सुवासिनी : परंतु देव, एक बड़ी भूल होगी ।

नंद : वह क्या ?

सुवासिनी : आर्य्य राक्षस का अभिनयपूर्ण गान नहीं हुआ ।

नंद : राक्षस !

नागरिक : यहीं हैं देव !
(राक्षस सम्मुख आकर प्रणाम करता है)

नंद : वसंतोत्व की रानी की आज्ञा से तुम्हें गाना होगा ।

राक्षस : उसका मूल्य होगा एक पात्र कादंब !
(सुवासिनी पात्र भरकर देती है) (सुवासिनी मान का मूक अभिनय करती है / राक्षस सुवासिनी के सम्मुख अभिनय सहित गाता है)

निकल मत बाहर दुर्बल आह लगेगा तुझे हँसी का शीत
शरद नीरद माला के बीच तड़प ले चपला-सी भयभीत
पड़ रहे पावन प्रेम-फुहार जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर
सम्हाले चल कितनी है दूर प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर
अश्रुमय सुंदर विरह निशीथ भरे तारे न ढुलकते आह !
न उफना दे आँसू हैं भरे इन्हीं आँखों में उनकी चाह
काकली-सी बनने की तुम्हें लगन लग जाय न हे भगवान्
पपीहा का पी सुनता कभी अरे कोकिल की देख दशा न,
हृदय है पास, साँस की राह चले आना-जाना चुपचाप
अरे छाया बन छू मत उसे भरा है तुझमें भीषण ताप
हिलाकर धड़कन से अविनीत जगा मत सोया है सुकुमार
देखता है स्मृतियों का स्वप्न हृदय पर मत कर अत्याचार

कई नागरिक : स्वर्गीय अमात्य वक्रनास के कुल की जय ।

नंद : क्या कहा—वक्रनास का कुल ?

नागरिक : हाँ देव, आर्य्य राक्षस उन्हीं के भ्रातृष्पुत्र हैं ।

नंद : राक्षस ! आज से तुम मेरे अमात्यवर्ग में नियुक्त हुए । तुम तो कुसुमपुर के एक रत्न हो !
(उसे माला पहनाता है और शस्त्र देता है)

सब : सम्राट् की जय हो ! अमात्य राक्षसकी जय हो !

नंद : और सुवासिनी—तुम मेरी अभिनयशाला की रानी !
(सब हर्ष प्रकट करते हुए जाते हैं)

३

(पाटलिपुत्र में एक भग्न कुटीर)

चाणक्य : (प्रवेश करके) झोपड़ी ही तो थी, पिताजी यहीं मुझे गोद में बिठा कर राज-मंदिर का सुख अनुभव करते थे । ब्राह्मण थे—ऋत और अमृत-जीविका से संतुष्ट थे, पर वे भी न रहे ! कहां गये, कोई नहीं जानता । मुझे भी कोई नहीं पहचानता । यही तो मगध का राष्ट्र है । प्रजा की खोज है किसे ? वृद्ध, दरिद्र ब्राह्मण कहीं ठोकरें खाता होगा या मर गया होगा !

(एक प्रतिवेशी का प्रवेश)

प्रतिवेशी : (देखकर) तुम कौन हो जी ? इधर के घरों को बड़ी देर से क्या घूर रहे हो ?

चाणक्य : ये घर हैं—जिन्हें पशु की खोह कहने में भी संकोच होता है ? यहाँ कोई स्वर्ण-रत्नों का ढेर नहीं, जो लुटने का भय हो ?

प्रतिवेशी : युवक, तुम किसी को खोज रहे हो ?

चाणक्य : हाँ खोज रहा हूँ—यहीं झोपड़ी में रहने वाले बृद्ध ब्राह्मण चणक को । आजकल वे कहाँ हैं, बता सकते हो ?

प्रतिवेशी : (सोच कर) ओहो, कई बरस हुए वह तो राजा की आज्ञा से निर्वासित कर दिया गया है । (हँसकर)—वह ब्राह्मण भी बड़ा हठी था । उसने राजा नंद के विरुद्ध प्रचार करना आरंभ किया था । सो भी क्यों—एक मंत्री शकटार के लिए । उसने सुना कि राजा ने शकटार का बंदीगृह में वध करवा डाला । ब्राह्मण ने नगर में इस अन्याय के विरुद्ध आतंक फैलाया । सबसे कहने लगा कि—"यह महापद्म का जारज पुत्र नंद—महापद्म का हत्याकारी नंद—मगध में राक्षसी राज्य कर रहा है, नागरिको, सावधान !"

चाणक्य : अच्छा, तब क्या हुआ ?

प्रतिवेशी : वह पकड़ा गया । सो भी कब, जब एक दिन अहेर की यात्रा करते हुए नंद के लिए राजपथ में मुक्तकंठ से नागरिकों ने अनादर के वाक्य कहे । नंद ने ब्राह्मण को समझाया । यह भी कहा कि तेरा मित्र शकटार बंदी है, मारा नहीं गया । पर वह बड़ा हठी था, उसने न माना, न-ही माना । नंद ने भी चिढ़ कर उसका ब्रह्मस्व बौद्ध-विहार में दे दिया और मगध से निर्वासित कर दिया । यही तो उसकी झोपड़ी है । (जाता है)

चाणक्य : (उसे बुलाकर) अच्छा एक बात और बताओ ।

प्रतिवेशी : क्या पूछते हो जी, तुम इतना जान लो कि नंद को ब्राह्मणों से घोर शत्रुता है और वह बौद्ध-धर्मानुयायी हो गया है ।

चाणक्य : होने दो, परंतु यह तो बताओ—शकटार का कुटुंब कहाँ है ?

प्रतिवेशी : कैसे मनुष्य हो ? अरे राज-कोपानल में वे सब जल मरे। इतना-सी बात के लिए मुझे लौटाया था—छिः ! (जाना चाहता है)

चाणक्य : हे भगवान् ! एक बात दया क़रके और बता दो—शकटार की कन्या सुवासिनी कहाँ है ?

प्रतिवेशी : (जोर से हँसता है) युवक ! वह बौद्ध-विहार में चली गयी थी, परंतु वहाँ भी न रह सकी। पहले तो अभिनय करती फिरती थी, आजकल कहाँ है, नहीं जानता। (जाता है)

चाणक्य : पिता का पता नहीं, झोपड़ी भी न रह गयी। सुवासिनी अभिनेत्री हो गयी —संभवतः पेट की ज्वाला से। एक साथ दो-दो कुटुंबों का सर्वनाश और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है! क्या इसी-लिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था ! मगध ! मगध ! सावधान ! इतना अत्याचार ! सहना असंभव है। तुझे उलट दूँगा। नया बनाऊँगा—नहीं तो नाश ही करूँगा। (ठहर कर) एक बार चलूँ—नंद से कहूँ। नहीं—परंतु मेरी भूमि, मेरी वृत्ति—वही मिल जाय, मैं शास्त्र-व्यवसायी न रहूँगा, मैं कृषक बनूंगा। मुझे राष्ट्र की भलाई-बुराई से क्या। तो चलूँ। (देखकर) यह एक लकड़ी का स्तंभ अभी उसी झोपड़ी का खड़ा है, इसके साथ मेरे बाल्यकाल की सहस्रों भाँवरियाँ लिपटी हुई हैं, जिन पर मेरी धवल मधुर हँसी का आवरण चढ़ा रहता था ! शैशव की स्मृति ! विलीन हो जा ! (खंभा खींच कर गिराता हुआ चला जाता है)

४

(कुसुमपुर के सरस्वती-मंदिर के उपवन का पथ)

राक्षस : सुवासिनी ! हठ न करो।

सुवासिनी : नहीं, उस ब्राह्मण को दंड दिये बिना सुवासिनी जी नहीं सकती अमात्य, तुमको करना होगा। मैं बौद्ध स्तूप की पूजा करके आ रही थी, उसने व्यंग किया और वह बड़ा कठोर था—राक्षस ! उसने कहा—"वेश्याओं के लिए भी एक धर्म की आवश्यकता थी, चलो अच्छा ही हुआ ऐसे धर्म के अनुकूल पतितों की भी कमी नहीं !"

राक्षस : यह उसका अन्याय था।

सुवासिनी : परंतु अन्याय का प्रतिकार भी है। नहीं तो मैं समझूँगी कि तुम भी वैसे ही एक कठोर ब्राह्मण हो।

राक्षस : मैं वैसा हूँ कि नहीं, यह पीछे मालूम होगा। परंतु सुवासिनी, मैं स्वयं हृदय से बौद्ध मत का समर्थक हूँ, केवल उसकी दार्शनिक सीमा तक, इतना ही कि संसार दुःखमय है।

सुवासिनी : इसके बाद ?

राक्षस : मैं इस क्षणिक जीवन की घड़ियों को सुखी बनाने का पक्षपाती हूँ। और तुम जानती हो कि मैंने ब्याह नहीं किया, परंतु भिक्षु भी न बन सका।

सुवासिनी : तब आज से मेरे कारण तुमको राजचक्र में बौद्ध मत का समर्थन करना होगा।

राक्षस : मैं प्रस्तुत हूँ।

सुवासिनी : फिर तो, मैं तुम्हारी हूँ। मुझे विश्वास है कि दुराचारी सदाचार के द्वारा शुद्ध हो सकता है, और बौद्ध मत इसका समर्थन करता है, सबको शरण देता है। हम दोनों उपासक होकर सुखी बनेंगे।

राक्षस : इतना बड़ा सुख-स्वप्न का जाल—आँखों में न फैलाओ।

सुवासिनी : नहीं प्रिय ! मैं तुम्हारी अनुचरी हूँ। मैं नंद की विलास-लीला का क्षुद्र उपकरण बनकर नहीं रहना चाहती। (जाती है)

राक्षस : एक परदा उठ रहा है, या गिर रहा है, समझ में नहीं आता (आँख मींचकर) सुवासिनी ! कुसुमपुर का स्वर्गीय कुसुम—मैं हस्तगत कर लूँ ? नहीं, राजकोप होगा ! परंतु जीवन वृथा है। मेरी विद्या, मेरा परिष्कृत विचार सब व्यर्थ हैं। सुवासिनी एक लालसा है, एक प्यास है। वह अमृत है, उसे पाने के लिए सौ बार मरूँगा। (नेपथ्य से—'हटो, मार्ग छोड़ दो' की ध्वनि सुनकर) कोई राजकुल की सवारी है ? तो चलूँ। (जाता है)

(रक्षियों के साथ शिविका पर राजकुमारी कल्याणी का प्रवेश)

कल्याणी : (शिविका से उतरती हुई लीला से) शिविका उद्यान के बाहर ले जानेके लिए कहो और रक्षी लोग भी वहीं ठहरें।
(शिविका लेकर रक्षी जाते हैं)
(देखकर) आज सरस्वती मंदिर में कोई समाज है क्या ? जा तो नीला, देख आ। (नीला जाती है)

लीला : राजकुमारी चलिये इस श्वेत शिला पर बैठिये। यहां अशोक की छाया बड़ी मनोहर है। अभी तीसरे पहर का सूर्य कोमल होने पर भी स्पृहणीय नहीं।

कल्याणी : चल। (दोनों जाकर बैठती हैं / नीला आती है)

नीला : राजकुमारी, आज तक्षशिला से लौटे हुए स्नातक लोग सरस्वती दर्शन के लिए आये हैं।

कल्याणी : क्या सब लौट आये हैं ?

नीला : यह तो न जान सकी।

कल्याणी : अच्छा, तू भी बैठ। देख, कैसी सुंदर माधवी लता फैल रही है। महाराज के उद्यान में भी लतायें ऐसी हरी-भरी नहीं, जैसे राजआतंक से वे भी डरी हुई हों। सच नीला, मैं देखती हूँ कि महाराज से कोई स्नेह नहीं करता, डरते भले ही हों।

नीला : सखी, मुझ पर उनका कन्या-सा ही स्नेह है, परंतु मुझे डर लगता है।

कल्याणी : मुझे इसका बड़ा दुःख है। देखती हूँ कि समस्त प्रजा उनसे त्रस्त और भयभीत रहती है, प्रचंड शासन करने के कारण उनका बड़ा दुर्नाम है।

नीला : परंतु इसका उपाय क्या है ? देख लीला, वे दो कौन इधर आ रहे हैं। चल, हम लोग छिप जायें।
(सब कुंज में चली जाती हैं / दो ब्रह्मचारियोंका प्रवेश)

एक ब्रह्मचारी : धर्मपालित मगध को उन्माद हो गया है। वह जनसाधारण के अधिकार अत्याचारियों के हाथ में देकर विलासिता का स्वप्न देख रहा है। तुम तो गये नहीं, मैं अभी उत्तरापथ से आ रहा

हूँ गणतंत्रों में सब प्रजा वन्यवीरुध के समान स्वच्छंद फल-फूल रही है। इधर उन्मत्त मगध, साम्राज्य की कल्पना में निमग्न है।

दूसरा : स्नातक, तुम ठीक कह रहे हो। महापद्म का जारज पुत्र नंद केवल शस्त्र-बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के सिर पर तांडव-नृत्य कर रहा है। वह सिद्धांत-विहीन, नृशंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेदनीति चलाकर बल-संचय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचायी जा रही है। परंतु तुम देश-विदेश देखकर आये हो, आज मेरे घर पर तुम्हारा निमंत्रण है, वहाँ सबको तुम्हारी यात्रा का विवरण सुनने का अवसर मिलेगा।

पहला : चलो। (दोनों जाते हैं कल्याणी बाहर आती है)

कल्याणी : सुनकर हृदय की गति रुकने लगती है। इतना कदर्थित राजपद ! जिसे साधारण नागरिक भी घृणा की दृष्टि से देखता है—कितने मूल्य का है लीला ?

(नेपथ्य से—भागो-भागो ! यह राजा का अहेरी चीता पिंजरे से निकल भागा है, भागो-भागो !—तीनों डरती हुई कुंज में छिपने लगती हैं / चीता आता है / दूर से आकर एक तीर उसका सिर भेद कर निकल जाता है—धनुष लिए हुए चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चंद्रगुप्त : कौन यहाँ है ? किधर से स्त्रियों का क्रंदन सुनाई पड़ा था !—(देखकर) अरे, यहाँ तो तीन सुकुमारियाँ हैं। भद्रे, पशु ने कुछ चोट तो नहीं पहुँचायी ?

लीला : साधु ! वीर ! राजकुमारी की प्राण-रक्षा के लिए तुम्हें अवश्य पुरस्कार मिलेगा !

चंद्रगुप्त : कौन ? राजकुमारी कल्याणी देवी ?

लीला : हाँ, यही न हैं ? भय से मुख विवर्ण हो गया है।

चंद्रगुप्त : राजकुमारी, मौर्य्य-सेनापति का पुत्र चंद्रगुप्त प्रणाम करता है।

कल्याणी : (स्वस्थ होकर सलज्ज) नमस्कार, चंद्रगुप्त, मैं कृतज्ञ हुई। तुम भी स्नातक होकर लौटे हो ?

चंद्रगुप्त : हाँ देवि, तक्षशिला में पाँच वर्ष रहने के कारण यहाँ के लोगों को पहचानने में विलंब होता है। जिन्हें किशोर छोड़कर गया था, अब वे तरुण दिखाई पड़ते हैं। मैं अपने कई बाल-सहचरों को भी न पहचान सका।

कल्याणी : परंतु मुझे आशा थी कि तुम मुझे भूल न जाओगे।

चंद्रगुप्त : देवि, यह अनुचर सेवा के उपयुक्त अवसर पर ही पहुँचा। चलिये, शिविका तक पहुँचा दूँ। (सब जाते हैं)

९

(मगध में नंद की राजसभा/राक्षस और सभासदों के साथ नंद)

नंद : हाँ, तब ?

राक्षस : दूत लौट आये और उन्होंने कहा कि पंचनद-नरेश को यह संबंध स्वीकार नहीं।

नंद : क्यों ?

राक्षस : प्राच्य-देश के बौद्ध और शूद्र राजा की कन्या से वे परिणय नहीं कर सकते।

नंद : इतना गर्व !

राक्षस : यह उनका गर्व नहीं, यह धर्म का दंभ है, व्यंग है। मैं इसका फल चखा दूँगा। मगध-जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का अपमान करके कोई यों ही नहीं बच जायेगा। ब्राह्मणों का यह····(प्रतिहार का प्रवेश)

प्रतिहार : जय हो देव, मगध से शिक्षा के लिए गये हुए तक्षशिला के स्नातक आये हैं।

नंद : लिवा लाओ।

(प्रतिहार का प्रस्थान / चंद्रगुप्त के साथ कई स्नातकों का प्रवेश)

स्नातक : राजाधिराज की जय हो !

नंद : स्वागत ! अमात्य वररुचि अभी नहीं आये, देखो तो !

(प्रतिहार का प्रस्थान और वररुचि के साथ प्रवेश)

वररुचि : जय हो देव, मैं स्वयं आ रहा था।

नंद : तक्षशिला से लौटे हुए स्नातकों की परीक्षा लीजिये ।

वररुचि : राजाधिराज, जिस गुरुकुल में मैं स्वयं परीक्षा देकर स्नातक हुआ हूँ, उसके प्रमाण की भी पुनः परीक्षा, अपने गुरुजनों के प्रति अपमान करना है ।

नंद : किंतु राजकोष का रुपया व्यर्थ ही स्नातकों को भेजने में लगता है या इसका सदुपयोग होता है, इसका निर्णय कैसे हो ?

राक्षस : केवल सद्धर्म की शिक्षा ही मनुष्यों के लिए पर्याप्त है ! और वह तो मगध में ही मिल सकती है ।

(चाणक्य का सहसा प्रवेश/त्रस्त दौवारिक पीछे-पीछे आता है)

चाणक्य : परंतु बौद्धधर्म की शिक्षा मानव-व्यवहार के लिए पूर्ण नहीं हो सकती, भले ही वह संघ-विहार में रहने वालों के लिए उपयुक्त हो ।

नंद : तुम अनधिकार चर्चा करने वाले कौन हो जी ?

चाणक्य : तक्षशिला से लौटा हुआ एक स्नातक ब्राह्मण ।

नंद : ब्राह्मण ! ब्राह्मण ! जिधर देखो कृत्या के समान इनकी आतंकज्वाला धधक रही है ।

चाणक्य : नहीं महाराज ! ज्वाला कहाँ ? भस्मावगुंठित अंगारे रह गये हैं !

राक्षस : तब भी इतना ताप !

चाणक्य : वह तो रहेगा ही ! जिस दिन उसका अंत होगा, उसी दिन आर्य्यावर्त्त का ध्वंस होगा । यदि अमात्य ने ब्राह्मण-विनाश करने का विचार किया हो तो जन्मभूमि की भलाई के लिए उसका त्याग कर दें, क्योंकि राष्ट्र का शुभ-चिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं । एक जीव की हत्या से डरनेवाले तपस्वी बौद्ध, सिर पर मंडराने वाली विपत्तियों से—रक्त-समुद्र की आँधियों से—आर्य्यावर्त्त की रक्षा करने में असमर्थ प्रमाणित होंगे ।

नंद : ब्राह्मण ! तुम बोलना नहीं जानते हो तो चुप रहना सीखो ।

चाणक्य : महाराज, उसे सीखने के लिए मैं तक्षशिला गया था और मगध का सिर ऊँचा करके उसी गुरुकुल में मैंने अध्यापन का कार्य भी किया है । इसलिए मेरा हृदय यह नहीं मान सकता कि मैं मूर्ख हूँ ।

नंद : तुम चुप रहो ।

चाणक्य : एक बात कहकर महाराज !

राक्षस : क्या ?

चाणक्य : यवनों की विकटवाहिनी निषध-पर्वतमाला तक पहुँच गई है—तक्षशिलीश की भी उसमें अभिसंधि है । संभवतः समस्त आर्य्यावर्त्त पादाक्रांत होगा । उत्तरापथ में बहुत-से छोटे-छोटे गणतंत्र हैं, वे उस सम्मिलित पारसीक—यवन-बल को रोकने में असमर्थ होंगे । अकेले पर्वतेश्वर ने साहस किया है, इसलिए मगध को पर्वतेश्वर की सहायता करनी चाहिये ।

कल्याणी : (प्रवेश करके) पिता जी, मैं पर्वतेश्वर के गर्व की परीक्षा लूँगी । मैं वृषल-कन्या हूँ । उस क्षत्रिय को यह सिखा दूंगी कि राज-कन्या कल्याणी किसी क्षत्राणी से कम नहीं । सेनापति को आज्ञा दीजिये कि आसन्न गांधार-युद्ध में मगध की सेना अवश्य जाय और मैं स्वयं उसका संचालन करूँगी । पराजित पर्वतेश्वर को सहायता देकर उसे नीचा दिखाऊँगी । (नंद हँसता है)

राक्षस : राजकुमारी, राजनीति महलों में नहीं रहती, इसे हम लोगों के लिये छोड़ देना चाहिये । उद्धत पर्वतेश्वर अपने गर्व का फल भोगें और ब्राह्मण चाणक्य ! परीक्षा देकर ही कोई साम्राज्य-नीति समझ लेने का अधिकारी नहीं हो जाता ।

चाणक्य : सच है बौद्ध अमात्य, परंतु यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण का भेद न रखेंगे ।

नंद : वाचाल ब्राह्मण ! तुम अभी चले जाओ, नहीं तो प्रतिहार तुम्हें धक्के देकर निकाल देंगे ।

चाणक्य : राजाधिराज मैं जानता हूँ कि प्रमाद में मनुष्य कठोर सत्य का भी अनुभव नहीं करता, इसीलिए मैंने प्रार्थना नहीं की—अपने अपहृत ब्रह्मस्व के लिए मैंने भिक्षा नहीं माँगी । क्यों ? जानता था कि वह मुझे ब्राह्मण होने के कारण न मिलेगी, परंतु जब राष्ट्र के लिए—

राक्षस : चुप रहो । चणक के पुत्र हो न, तुम्हारे पिता भी ऐसे ही हठी थे ।

नंद : क्या ! उसी विद्रोही ब्राह्मण की संतान ? निकालो इसे अभी यहाँ से ।
(प्रतिहार आगे बढ़ता है/ चंद्रगुप्त सामने आकर रोकता है)

चंद्रगुप्त : सम्राट् मैं प्रार्थना करता हूँ कि गुरुदेव का अपमान न किया जाय। मैं भी उत्तरापथ से आ रहा हूँ । आर्य्य चाणक्य ने जो कुछ कहा है, वह साम्राज्य के हित की बात है । उस पर विचार किया जाय ।

नंद : कौन ? सेनापति मौर्य्य का कुमार चंद्रगुप्त !

चंद्रगुप्त : हाँ देव, मैं युद्ध-नीति सीखने के लिए ही तक्षशिला भेजा गया था । मैंने अपनी आँखों गांधार का उपप्लव देखा है, मुझे गुरुदेव के मत में पूर्ण विश्वास है । यह आगंतुक आपत्ति पंचनद-प्रदेश तक ही न रह जायगी ।

नंद : अबोध युवक, तो क्या इसीलिए अपमानित होने पर भी मैं पर्वतेश्वर की सहायता करूँ ? असंभव है । तुम राजाज्ञाओं में बाधा न देकर शिष्टता सीखो । प्रतिहार, निकालो इस ब्राह्मण को यह बड़ा ही कुचक्री मालूम पड़ता है ।

चंद्रगुप्त : राजाधिराज, ऐसा करके आप एक भारी अन्याय करेंगे और मगध के शुभचिंतकों को शत्रु बनायेंगे ।

कल्याणी : पिताजी, चंद्रगुप्त पर ही दया कीजिये । एक बात उसकी भी मान लीजिये ।

नंद : चुप रहो, ऐसे उद्दंड को मैं कभी नहीं क्षमा करता, और सुनो चंद्रगुप्त, तुम भी यदि इच्छा हो तो इसी ब्राह्मण के साथ जा सकते हो, अब कभी मगध में मुँह न दिखाना ।
(प्रतिहार दोनों को निकालना चाहता है / चाणक्य रुककर कहता है)

चाणक्य : सावधान नंद ! तुम्हारी धर्मांधता से प्रेरित राजनीति आँधी की तरह चलेगी, उसमें नंद-वंश समूल उखड़ेगा । नियति-सुंदरी के भवों में बल पड़ने लगा है । समय आ गया है कि शूद्र राजसिंहासन से हटाये जायँ और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त हों ।

नंद : यह समझकर कि ब्राह्मण अबध्य है तू मुझे भय दिखलाता है ! प्रतिहार, इसकी शिखा पकड़कर इसे बाहर करो ।

(प्रतिहार उसकी शिखा पकड़कर घसीटता है / वह निश्शंक और दृढ़ता से कहता है)

चाणक्य : खींच ले ब्राह्मण की शिखा ! शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते ? खींच ले ! परंतु यह शिखा नंदकुल की काल-सर्पिणी है, वह तब तक न बंधन में होगी, जब तक नंद-कुल निश्शेष न होगा ।

नंद : इसे बंदी करो । (चाणक्य बंदी किया जाता है)

६

(सिंधु-तट पर अलका और मालविका)

मालविका : राजकुमारी ! मैं देख आयी, उद्‌भांड में सिंधु पर सेतु बन रहा है । युवराज स्वयं उसका निरीक्षण करते हैं । और मैंने उक्त सेतु का एक मानचित्र भी प्रस्तुत किया था । यह कुछ अधूरा-सा रह गया है पर इसके देखने से कुछ आभास मिल जायगा ।

अलका : सखी ! बड़ा दुःख होता है, जब मैं यह स्मरण करती हूँ कि स्वयं महाराज का इसमें हाथ है । देखूँ तो तेरा मानचित्र !

(मालविका मानचित्र देती हैं, अलका उसे देखती है, एक यवन सैनिक का प्रवेश—वह मानचित्र अलका से ले लेना चाहता है)

अलका : दूर हो दुर्विनीत दस्यु । (मानचित्र अपने कंचुकी में छिपा लेती हैं)

यवन : यह गुप्तचर है, मैं इसे पहचानता हूँ । परंतु सुंदरी ! तुम कौन हो जो इसकी सहायता कर रही हो ? अच्छा हो कि मुझे मानचित्र मिल जाय, और मैं इसे सप्रमाण बंदी बनाकर महाराज के सामने ले जाऊँ ।

अलका : यह असंभव है । पहले तुम्हें बताना होगा कि तुम यहाँ किस अधिकार से यह अत्याचार किया चाहते हो ?

यवन : मैं ? देवपुत्र विजेता अलक्षेंद्र का नियुक्त अनुचर हूँ और तक्षशिला की मित्रता का साक्षी हूँ । यह अधिकार मुझे गांधार-नरेश ने दिया है ।

अलका : आह—यवन ! गांधार-नरेश ने तुम्हें यह अधिकार कभी नहीं दिया

होगा कि तुम आर्य्य-ललनाओं के साथ धृष्टता का व्यवहार करो ।

यवन : करना ही पड़ेगा, मुझे मानचित्र लेना ही होगा ।

अलका : कदापि नहीं ।

यवन : क्या यह वही मानचित्र नहीं है, जिसे इस स्त्री ने उद्भांड में बनाना चाहा था ?

अलका : परंतु यह तुम्हें नहीं मिल सकता । यदि तुम सीधे यहाँ से न टलोगे तो शांति-रक्षकों को बुलाउँगी ।

यवन : तब तो मेरा उपकार होगा, क्योंकि इस अगूँठी को देखकर वे मेरी सहायता करेंगे ।

अलका : (देखकर सिर पकड़ लेती हैं) ओह !

यवन : (हँसता हुआ) अब ठीक पथ पर आ गयी होगी—बुद्धि । लाओ, मानचित्र मुझे दे दो ।

(अलका निस्सहाय इधर-उधर देखती है / सिंहरण का प्रवेश)

सिंहरण : (चौंककर) हैं ! कौन राजकुमारी ! और यह यवन !

अलका : मालववीर ! स्त्री की मर्य्यादा को न समझने वाले इस यवन को तुम समझा दो कि यह चला जाय ।

सिंहरण : यवन, क्या तुम्हारे देश की सभ्यता तुम्हें स्त्रियों का सम्मान करना नहीं सिखाती ? क्या सचमुच तुम बर्ब्बर हो ?

यवन : मेरी उस सभ्यता ने ही मुझे रोक लिया है, नहीं तो मेरा यह कर्त्तव्य था कि मैं उस मानचित्र को किसी भी पुरुष के हाथ में होने से उसे जैसे बनता—ले ही लेता ।

सिंहरण : तुम बड़े प्रगल्भ हो यवन ! क्या तुम्हें भय नहीं कि तुम एक दूसरे राज्य में ऐसा आचरण करके अपनी मृत्यु बुला रहे हो ?

यवन : उसे आमंत्रण देने के लिए ही उतनी दूर से आया हूँ ।

सिंहरण : राजकुमारी ! यह मानचित्र मुझे देकर आप निरापद हो जायँ, फिर मैं देख लूँगा ।

अलका : (मानचित्र देती हुई) तुम्हारे ही लिए तो यह मंगाया गया था ।

सिंहरण : (उसे देखते हुए) ठीक है, मैं रुका भी इसीलिए था । (यवन से)

हाँ जी, कहो, अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?

यवन : (खड्ग निकाल कर) मानचित्र हमें दे दो या प्राण देना होगा ।

सिंहरण : उसके अधिकारी का निर्वाचन खड्ग करेगा ! तो फिर सावधान हो जाओ, (तलवार खींचता है)

(यवन के साथ युद्ध—सिंहरण घायल होता है परंतु यवन को उसके भीषण प्रत्याक्रमण से भय होता है, वह भाग निकलता है)

अलका : वीर ! यद्यपि तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है, परंतु अवस्था बड़ी भयानक है । वह जाकर कुछ उत्पात मचावेगा । पिताजी पूर्णरूप से यवनों के हाथ में आत्म-समर्पण कर चुके हैं ।

सिंहरण : (हँसता और रक्त पोंछता हुआ) मेरा काम हो गया राजकुमारी । मेरी नौका प्रस्तुत है, मैं जाता हूँ । परंतु बड़ा अनर्थ हुआ चाहता है क्या गांधार-नरेश किसी तरह न मानेंगे ?

अलका : कदापि नहीं, पर्वतेश्वर से उनका बद्धमूल वैर है ।

सिंहरण : अच्छा देखा जायगा, जो कुछ होगा । देखिए मेरीं नौका आ रही है अब विदा माँगता हूं । (सिंधु में नौका आती है/घायल सिंहरण उस पर बैठता हैं/सिंहरण और अलका दोनों दूसरे को देखते हैं)

अलका : मालविका भी तुम्हारे साथ जायगी—तुम अकेले जाने योग्य इस समय नहीं हो ।

सिंहरण : जैसी आज्ञा । बहुत शीघ्र फिर दर्शन करूँगा । जन्मभूमि के लिए ही जीवन है । फिर जब आप-सी सुकुमारियां इसकी सेवा में कटिबद्ध हैं तब मैं पीछे कब रहूँगा । अच्छा नमस्कार । (मालविका नाव में बैठती है/अलका सतृष्ण नयनों से देखती हुई नमस्कार करती है / नाव चली जाती है / चार सैनिकों के साथ यवन का प्रवेश)

यवन : निकल गया मेरा अहेर ! यह सब प्रपंच इसी रमणी का है । इसको बंदी वनाओ । (सैनिक अलका को देखकर सिर झुकाते हैं)

बंदी करो सैनिक !

सैनिक : मैं नही कर सकता ।

यवन : क्यों गांधार-नरेश ने तुम्हें क्या आज्ञा दी है ?

सैनिक : यही कि आप जिसे कहें, उसे हम लोग बंदी करके महाराज के पास ले चलें।

यवन : फिर विलंब क्यों ?

(अलका संकेत से वर्जित करती है)

सैनिक : हम लोगों की इच्छा।

यवन : तुम राजद्रोही हो।

सैनिक : कदापि नहीं; पर यह काम हम लोगों से न हो सकेगा।

यवन : सावधान ! तुमको इस आज्ञा-भंग का फल भोगना पड़ेगा। मैं स्वयं बंदी बनाता हूँ / ठहर कर / अलका की ओर बढ़ता है सैनिक तलवार खींच लेते हैं) यह क्या ?

सैनिक : डरते हो क्या ? कायर ! स्त्रियों पर वीरता दिखाने में बड़े प्रबल हो और एक युवक के सामने भाग निकले !

यवन : तो क्या, तुम राजकीय आज्ञा का न स्वयं पालन करोगे और न करने दोगे।

सैनिक : यदि साहस हो मरने का—तो आगे बढ़ो।

अलका : (सैनिकों से) ठहरो, विवाद करने का समय नहीं है। (यवन से) कहो, तुम्हारा अभिप्राय क्या है।

यवन : मैं तुम्हें बंदी करना चाहता हूँ।

अलका : कहाँ ले चलोगे ?

यवन : गांधार-नरेश के पास।

अलका : मैं चलती हूं, चलो। (आगे अलका, पीछे यवन और सैनिक जाते हैं)

७

(मगध का बंदीगृह)

चाणक्य : समीर की गति भी अवरुद्ध है, शरीर का फिर क्या कहना ! परंतु मन में इतने संकल्प और विकल्प ? एक बार निकलने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है और ब्राह्मण के कोमल हृदय में कर्त्तव्य के लिए प्रलय की आँधी

चला देने की कठोरता भी है। जकड़ी हुई लौह शृंखले ! एक बार तू फूलों की माला बन जा और मैं मदोन्मत्त विलासी के समान तेरी सुंदरता को भंग कर दूँ ! क्या रोने लगूँ ? इस निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से बिलबिलाकर दया की भिक्षा माँगूँ ? और माँगूँ कि मुझे भोजन के लिए एक मुट्ठी चने जो देते हो, न दो, एक बार स्वतंत्र कर दो ? नहीं चाणक्य ! ऐसा न करना। नहीं तो तू भी साधारण-सी ठोकर खाकर चूर-चूर हो जाने वाली एक बामी रह जायगा। तब—मैं आज से प्रण करता हूँ कि दया किसी से न माँगूँगा और अधिकार तथा अवसर मिलने पर किसी पर न करूँगा (ऊपर देखकर)—क्या कभी नहीं ? हाँ—हाँ कभी किसी पर नहीं। मैं प्रलय-वन्या के समान अबाध गति और कर्त्तव्य में इंद्र के वज्र के समान भयानक बनूँगा। (किवाड़ खुलता है, वररुचि और राक्षस का प्रवेश)

राक्षस : स्नातक ! अच्छे तो हो ?

चाणक्य : बुरे कब थे बौद्ध अमात्य !

राक्षस : आज हम लोग एक काम से आये हैं। आशा है कि तुम अपनी हठवादिता से मेरा और अपना दोनों का अपकार न करोगे।

वररुचि : हाँ चाणक्य ! अमात्य का कहना मान लो।

चाणक्य : भिक्षोपजीवी ब्राह्मण ! क्या बौद्धों का संग करते-करते तुम्हें अपनी गरिमा का संपूर्ण-विस्मरण हो गया ? चाटुकारों के समान हाँ में हाँ मिलाकर, जीवन की कठिनाइयों से बचकर, मुझे भी कुत्ते का पाठ पढ़ाना चाहते हो। भूलो मत, यदि राक्षस देवता हो जाय तो उसका विरोध करने के लिए मुझे ब्राह्मण से दैत्य बनना पड़ेगा। क्योंकि, मैं जानता हूँ वह भी इसका कपट रूप होगा।

वररुचि : ब्राह्मण हो भाई ! त्याग और क्षमा के प्रमाण—तपोनिधि ब्राह्मण हो। इतना····

चाणक्य : त्याग और क्षमा, तप, और विद्या—तेज और सम्मान के लिए है—लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने के लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया

जाय, ऐसा नहीं हो सकता। कात्यायन ! अब केवल पाणिनि से काम न चलेगा। अर्थशास्त्र और दंड-नीति की आवश्यकता है।

वररुचि : मैं वार्त्तिक लिख रहा हूँ चाणक्य ! उसी के लिए तुम्हें सहकारी बनाना चाहता हूँ। तुम इस बंदीगृह से निकलो।

चाणक्य : मैं लेखक नहीं हूँ कात्यायन ! शास्त्र-प्रणेता हूँ—व्यवस्थापक हूँ।

राक्षस : अच्छा, मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम विवाद न बढ़ाकर स्पष्ट उत्तर दो। तुम तक्षशिला में मगध के गुप्त-प्रणिधि बनकर जाना चाहते हो या मृत्यु चाहते हो ? तुम्हीं पर विश्वास करके क्यों भेजना चाहता हूँ, यह तुम्हारी स्वीकृति मिलने पर बताऊंगा।

चाणक्य : जाना तो चाहता हूँ तक्षशिला, पर तुम्हारी सेवा के लिए नहीं। और सुनो, पर्वतेश्वर का नाश करने के लिए तो कदापि नहीं।

राक्षस : यथेष्ट है, अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

वररुचि : विष्णुगुप्त ! मेरा वार्त्तिक अधूरा रह जायगा। मान जाओ। तुमको पाणिनि के कुछ प्रयोगों का पता भी लगाना होगा जो उस शालातुरीय वैयाकरण ने लिखे हैं। फिर से एक बार तक्षशिला जाने पर ही उनका....

चाणक्य : मेरे पास पाणिनि में सिर खपाने का समय नहीं। भाषा ठीक करने से पहले मैं मनुष्यों को ठीक करना चाहता हूँ, समझे !

वररुचि : जिसने 'श्वयुवमघोनामतद्धते' सूत्र लिखा है, वह केवल वैयाकरण ही नहीं, दार्शनिक भी था। उसकी अवहेलना !

चाणक्य : यह मेरी समझ में नहीं आता, मैं कुत्ता, साधारण युवक और इंद्र को कभी एक सूत्र में नहीं बाँध सकता। कुत्ता कुत्ता ही रहेगा, इंद्र इंद्र ही, सुनो वररुचि ! मैं कुत्ते को कुत्ता ही बनाना चाहता हूँ। नीचों के हाथ में इंद्र का अधिकार चले जाने से जो सुख होता है, उसे मैं भोग रहा हूँ। तुम जाओ।

वररुचि : क्या मुक्ति भी नहीं चाहते ?

चाणक्य : तुम लोगों के हाथों से वह भी नहीं।

राक्षस : अच्छा तो फिर तुम्हें अंधकूप में जाना होगा।

(चंद्रगुप्त का रक्तपूर्ण खड्ग लिए सहसा प्रवेश—चाणक्य का बंधन काटता है / राक्षस प्रहरियों को बुलाना चाहता है)

चंद्रगुप्त : चुप रहो अमात्य ! शवों में बोलने की शक्ति नहीं, तुम्हारे प्रहरी जीवित नहीं रहे ।

चाणक्य : मेरे शिष्य ! वत्स चंद्रगुप्त ।

चंद्रगुप्त : चलिए गुरुदेव ! (खड्ग उठाकर राक्षस से) यदि तुमने कुछ भी कोलाहल किया तो····(राक्षस बैठ जाता है—वररुचि गिर पड़ता है / चंद्रगुप्त चाणक्य को लिए निकलता हुआ किवाड़ बंद कर देता है)

८

(गांधार नरेश का प्रकोष्ठ / चिंतायुक्त राजा प्रवेश करते हुए)

राजा : बूढ़ा हो चला, परंतु मन बूढ़ा न हुआ । बहुत दिनों तक तृष्णा को तृप्त करता रहा, पर तृप्त नहीं होती । आंभीक तो अभी युवक है, उसके मन में महत्त्वाकांक्षा का होना अनिवार्य है । उसका पथ कुटिल है, गंधर्व-नगर की-सी सफलता उसे अपने पीछे दौड़ा रही है । (विचार कर) हाँ ठीक तो नहीं है, पर उन्नति के शिखर पर नाक के सीधे चढ़ने में बड़ी कठिनता है । (ठहर कर) रोक दूँ ! अब से भी अच्छा है, जब वे घुस आवेंगे तब तो गांधार को भी वही कष्ट भोगना पड़ेगा, जो हम दूसरों को देना चाहते हैं—

(अलका के साथ यवन और रक्षकों का प्रवेश)

बेटी ! अलका !

अलका : हाँ महाराज, अलका !

राजा : नहीं, कहो—हाँ पिताजी । अलका, कब तक तुम्हें सिखाता रहूँ !

अलका : नहीं महाराज !

राजा : फिर महाराज ! पागल लड़की—कह, पिता जी !

अलका : वह कैसे महाराज ! न्यायाधिकरण पिता-संबोधन से पक्षपाती हो जायगा ।

राजा : यह क्या ?

यवन : महाराज ! मुझे नहीं मालूम कि ये राजकुमारी हैं । अन्यथा मैं, इन्हें बंदी न बनाता ।

राजा : सिल्यूकस ! तुम्हारा मुख कंधे पर से बोल रहा है । यवन ! यह मेरी राजकुमारी अलका है । आ बेटी ! (उसकी ओर हाथ बढ़ाता है / वह अलग हट जाती है)

अलका : नहीं महाराज ! पहले न्याय कीजिये ।

यवन : उद्भांड पर बंधने वाले पुल का मानचित्र इन्होंने एक स्त्री से बनवाया है, और जब मैं उसे माँगने लगा, तो एक युवक को देकर इन्होंने उसे हटा दिया । मैंने यह समाचार आप तक निवेदन किया और आज्ञा मिली कि वे बंदी किये जायँ; परंतु वह युवक निकल गया ।

राजा : क्यों बेटी ! मानचित्र देखने की इच्छा हुई थी ? (सिल्यूकस से) तो क्या चिंता है, जाने दो—मानचित्र तुम्हारा पुल बँधना रोक नहीं सकता ।

अलका : नहीं महाराज् ? मानचित्र एक विशेष कार्य से बनवाया गया है—वह गांधार की लगी हुई कालिख छुड़ाने के लिए····

राजा : सो तो मैं जानता हूँ बेटी ! तुम क्या कोई नासमझ हो ।
(वेग से आंभीक का प्रवेश)

आंभीक : नहीं पिताजी, आपके राज्य में एक भयानक षड्यंत्र चल रहा है और तक्षशिला का गुरुकुल उसका केंद्र है । अलका उस रहस्यपूर्ण कुचक्र की कुंजी है ।

राजा : क्यों अलका यह बात सही है ?

अलका : सत्य है महाराज ! जिस उन्नति की आशा में आंभीक ने यह नीच कर्म किया है, उसका पहला फल यह है कि आज मैं बंदिनी हूँ, संभव है कल आप होंगे और परसों-गांधार की जनता बेगार करेगी । उनका मुखिया होगा आपका वंश-उज्ज्वलकारी—आंभीक ।

यवन : संधि के अनुसार देवपुत्र का साम्राज्य और गांधार मित्र-राज्य हैं, यह व्यर्थ की बात है ।

आंभीक : सिल्यूकस ! तुम विश्राम करो। हम इसको समझ कर तुमसे मिलते हैं। (यवन का प्रस्थान / रक्षक दूसरी ओर जाते हैं)

राजा : परंतु आंभीक ! राजकुमारी बंदिनी बनायी जाय, वह भी मेरे ही सामने ! उसके लिए एक यवन दंड की व्यवस्था करे, यही तो तुम्हारे उद्योगों का फल है !

अलका : महाराज ! मुझे दंड दीजिये, कारागार में भेजिये, नहीं तो मैं मुक्त रहने पर यही करूँगी। कुलपुत्रों के रक्त से आर्य्यावर्त्त की भूमि सिंचेगी ! दानवी बनकर जननी जन्म-भूमि अपनी संतान को खायेगी। महाराज ! आर्य्यावर्त्त के सब बच्चे आंभीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान-प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जायँगे। स्मरण रहे, यवनों की विजयवाहिनी के आक्रमण को प्रत्यावर्त्तन बनाने वाले यही भारत-संतान होंगे। सब बचे हुए क्षतांग-वीर, गांधार को—भारत के द्वार-रक्षक को—विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उसमें नाम लिखा जायगा मेरे पिता का आह ! उसे सुनने के लिए मुझे जीवित न छोड़िये। दंड दीजिये—मृत्युदंड !

आंभीक : इसे उन सबों ने खूब बहकाया है। राजनीति के खेल यह क्या जाने ! पिताजी, पर्वतेश्वर—उद्दंड पर्वतेश्वर ने जो मेरा अपमान किया है, उसका प्रतिशोध !

राजा : हाँ बेटी। उसने स्पष्ट कह दिया कि, कायर आंभीक से अपने लोक विश्रुत कुल की कुमारी का ब्याह न करूँगा। और भी उसने वितस्ता के इस पार अपनी एक चौकी बना ली है—जो प्राचीन संधियों के विरुद्ध है।

अलका : तब महाराज। उस प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जो लड़कर मर नहीं गया वह कायर नहीं तो और क्या है।

आंभीक : चुप रहो अलका।

राजा : तुम दोनों ही ठीक बातें कर रहे हो, फिर मैं क्या करूँ ?

अलका : तो महाराज ! मुझे दंड दीजिये, क्योंकि राज्य का उत्तराधिकारी आंभीक ही उसके शुभाशुभ की कसौटी है, मैं भ्रम में हूँ।

राजा : मैं यह कैसे कहूँ ?
अलका : तब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं राज-मंदिर छोड़कर चली जाऊँ ।
राजा : कहाँ जाओगी और क्या करोगी अलका ?
अलका : गांधार में विद्रोह मचाऊँगी ।
राजा : नहीं अलका, तुम ऐसा नहीं करोगी ।
अलका : करूँगी महाराज, अवश्य करूँगी ।
राजा : फिर मैं पागल हो जाऊँगा । मुझे तो विश्वास नहीं होता ।
आंभीक : और तब अलका, मैं अपने हाथों से तुम्हारी हत्या करूँगा ।
राजा : नहीं आंभीक । तुम चुप रहो । सावधान ! अलका के शरीर पर जो हाथ उठाना चाहता है, उसे मैं द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारता हूँ । (आंभीक सिर नीचे कर लेता है)
अलका : तो मैं जाती हूँ पिता जी ।
राजा : (अन्यमनस्क भाव से सोचता हुआ) जाओ (अलका चली जाती है) । आंभीक !
आंभीक : पिता जी !
राजा : लौट जाओ ।
आंभीक : इस अवस्था में तो लौट आता, परंतु वे यवन सैनिक छाती पर खड़े हैं । पुल बँध चुका है । नहीं तो पहले गाँधार का ही नाश होगा ।
राजा : तब ? (निश्वास लेकर)—जो होना हो—सो हो । पर एक बात आंभीक—आज से मुझसे कुछ न कहना । जो उचित समझो, करो । मैं अलका को खोजने जाता हूँ । गांधार जाने और तुम जानो । (वेग से प्रस्थान)

९

(पर्वतेश्वर की राजसभा)

पर्वतेश्वर : आर्य्य चाणक्य ! आपकी बातें ठीक-ठीक नहीं समझ में आतीं ।
चाणक्य : कैसे आवेंगी, मेरे पास केवल बात ही हैं न, अभी कुछ कर दिखाने में असमर्थ हूँ ।

पर्वतेश्वर : परंतु इस समय मुझे यवनों से युद्ध करना है, मैं अपना एक भी सैनिक मगध नहीं भेज सकता ।

चाणक्य : निरुपाय हूँ—लौट जाऊँगा । नहीं तो मगध की लक्षाधिक सेना आगामी यवन-युद्ध में पौरव पर्वतेश्वर की पताका के नीचे युद्ध करती । वही मगध—जिसने सहायता माँगने पर पंचनद का तिरस्कार किया था ।

पर्वतेश्वर : हाँ, तो इस मगध-विद्रोह का केंद्र कौन होगा ? नंद के विरुद्ध कौन खड़ा होता है ?

चाणक्य : मौर्य्य-सेनानी का पुत्र चंद्रगुप्त—जो मेरे साथ यहाँ आया है ।

पर्वतेश्वर : पिप्पली-कानन के मौर्य्य भी तो वैसे ही वृषल हैं, उनको राजसिंहासन दीजियेगा ?

चाणक्य : आर्य्य-क्रियाओं का लोप हो जाने से इन लोगों को वृषलत्व मिला, वस्तुतः ये क्षत्रिय हैं । बौद्धों के प्रभाव में आने से इनके श्रौत-संस्कार छूट गये हैं—अवश्य, परंतु इनके क्षत्रिय होने में कोई संदेह नहीं । और महाराज ! धर्म के नियामक ब्राह्मण हैं, मुझे पात्र देखकर उसका संस्कार करने का अधिकार है । ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है । वह अपनी रक्षा के लिए, पुष्टि के लिए और सेवा के लिए इतर वर्णों का संगठन कर लेगा । राजन्य-संस्कृति से पूर्ण मनुष्य को मूर्द्धाभिषिक्त बनाने में दोष ही क्या है ?

पर्वतेश्वर : (हँसकर) यह आपका सुविचार नहीं है ब्रह्मन् !

चाणक्य : वशिष्ठ का ब्रह्मणत्व जब पीड़ित हुआ था, तब पल्लव, दरद, कांबोज आदि क्षत्रिय बने थे । राजन् यह कोई नई बात नहीं है ।

पर्वतेश्वर : वह समर्थ ऋषियों की बात है ।

चाणक्य : भविष्य इसका विचार करता है कि ऋषि किन्हें कहते हैं । क्षत्रियाभिमानी पौरव ! तुम इसके निर्णायक नहीं हो सकते ।

पर्वतेश्वर : शूद्र शासित राष्ट्र में रहने वाले ब्राह्मण के मुख से यह बात शोभा नहीं देती ।

चाणक्य : तभी तो ब्राह्मण मगध को क्षत्रिय-शासन में ले आना चाहता है। पौरव ! जिसके लिए कहा गया है, कि क्षत्रिय के शस्त्र धारण करने पर आर्त्तवाणी नहीं सुनाई पड़नी चाहिये, मौर्य्य चंद्रगुप्त वैसा ही क्षत्रिय प्रमाणित होगा।

पर्वतेश्वर : कल्पना है।

चाणक्य : प्रत्यक्ष होगी ! और, स्मरण रखना—आसन्न यवन-युद्ध में, शौर्य्य-गर्व से तुम पराभूत होगे। यवनों के द्वारा समग्र आर्य्यावर्त्त पादाक्रांत होगा। उस समय तुम मुझे स्मरण करोगे।

पर्वतेश्वर : केवल अभिशाप अस्त्र लेकर ही तो ब्राह्मण लड़ते हैं। मैं इससे नहीं डरता। परंतु डराने वाले ब्राह्मण ! तुम मेरी सीमा के बाहर हो जाओ।

चाणक्य : (ऊपर देखकर)—रे पददलित ब्राह्मणत्व ? देख, शूद्र ने निगड़बद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जल—एक बार अपनी ज्वाला से जल ! उसकी चिनगारी से तेरे पोषक वैश्य, सेवक शूद्र, और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न हों। जाता हूँ पौरव ! (प्रस्थान)

१०

(कानन पथ में अलका)

अलका : चली जा रही हूँ। अनंत पथ है, कहीं पांथशाला नहीं, और न पहुँचने का निर्दिष्ट स्थान—शैल पर से गिरा दी गई स्रोतस्विनी के सदृश अविराम भ्रमण, ठोकर और तिरस्कार। कानन में कहाँ चली जा रही हूँ ? (सामने देखकर) अरे—यवन !

(शिकारी के वेश में सिल्यूकस का प्रवेश)

सिल्यूकस : तुम कहां सुंदरी राजकुमारी !

अलका : मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं। फिर मैं कहाँ जाऊँगी यवन !

सिल्यूकस : यहाँ तो तुम अकेली हो सुंदरी !

अलका : सो तो ठीक है—(दूसरी ओर देखकर सहमा) परंतु देखो वह सिंह आ रहा है !

(सिल्यूकस उधर देखता है / अलका दूसरी ओर निकल जाती है)

सिल्यूकस : निकल गयी ! (दूसरी ओर जाता है)

(चाणक्य और चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चाणक्य : वत्स तुम बहुत थक गये होगे ।

चंद्रगुप्त : आर्य्य ! नसों ने अपने बंधन ढीले कर दिये हैं, शरीर अवसन्न हो रहा है, प्यास भी लगी है ।

चाणक्य : और कुछ दूर न चल सकोगे ?

चंद्रगुप्त : जैसी आज्ञा हो ।

चाणक्य : पास ही सिंधु लहराता होगा, उसके तट पर ही विश्राम करना ठीक होगा । (चंद्रगुप्त चलने के लिए पैर बढ़ाता है फिर बैठ जाता है) (उसे पकड़ कर) सावधान—चंद्रगुप्त !

चंद्रगुप्त : आर्य्य ? प्यास से कंठ सूख रहा है—चक्कर आ रहा है ।

चाणक्य : तुम विश्राम करो, मैं अभी जल लेकर आता हूँ (प्रस्थान / चंद्रगुप्त पसीने से तर लेट जाता है / एक व्याघ्र समीप आता दिखाई पड़ता है / सिल्यूकस प्रवेश करके धनुष सँभाल कर तीर चलाता है / व्याघ्र मरता है / सिल्यूकस की चंद्रगुप्त को सचेत करने की चेष्टा / चाणक्य का जल लिये आना)

सिल्यूकस : थोड़ा जल—इस सत्वपूर्ण पथिक की रक्षा करने के लिए थोड़ा जल चाहिये ।

चाणक्य : (जल के छींटे देकर) आप कौन हैं ? (चंद्रगुप्त स्वस्थ होता है)

सिल्यूकस : यवन सेनापति, तुम कौन हो ?

चाणक्य : एक ब्राह्मण ।

सिल्यूकस : यह तो कोई बड़ा श्रीमान् पुरुष है । ब्राह्मण ! तुम इसके साथी हो ?

चाणक्य : हाँ, मैं इस राजकुमार का गुरु हूँ—शिक्षक हूँ ।

सिल्यूकस : कहाँ निवास है ?

चाणक्य : यह चंद्रगुप्त मगध का निर्वासित राजकुमार है ।

सिल्यूकस : (कुछ विचार कर)—अच्छा, अभी तो मेरे शिविर में चलो, विश्राम करके फिर कहीं जाना ।

चंद्रगुप्त : यह व्याघ्र कैसे मरा ? ओह, प्यास से मैं हतचेत हो गया था—आपने मेरे प्राणों की रक्षा की, मैं कृतज्ञ हूँ । आज्ञा दीजिये, हम लोग फिर उपस्थित होंगे, निश्चय जानिये ।

सिल्यूकस : जब तुम अचेत पड़े थे तब यह तुम्हारे पास बैठा था । मैंने विपद समझ कर इसे मार डाला—मैं यवन सेनापति हूँ ।

चंद्रगुप्त : धन्यवाद ! भारतीय कृतघ्न नहीं होते—सेनापति ! मैं आपका अनुगृहीत हूँ, अवश्य आपके पास आऊँगा ।
(तीनों जाते / अलका का प्रवेश)

अलका : आर्य्य चाणक्य और चंद्रगुप्त—ये भी यवनों के साथी ! जब आँधी और करका-वृष्टि, अवर्षण और दावाग्नि का प्रकोप हो, तब देश की हरी-भरी खेती का रक्षक कौन है ? शून्य व्योम प्रश्न को बिना उत्तर दिये लौटा देता है । ऐसे लोग भी आक्रमणकारियों के चंगुल में फँस रहे हों, तब रक्षा की क्या आशा ? झेलम के पार सेना उतरना चाहती है, उन्मत्त पर्वतेश्वर अपने विचारों में मग्न है । गांधार छोड़कर चलूँ, नहीं एक बार महात्मा दांड्यायन को नमस्कार कर लूँ, उस शांति-संदोह से कुछ प्रसाद लेकर तब अन्यत्र जाऊँगी । (जाती है)

११

(सिंधु तट पर दांड्यायन का आश्रम)

दांड्यायन : पवन एक क्षण विश्राम नहीं लेता, सिंधु की जलधारा बही जा रही है, बादलों में नीचे पक्षियों का झुंड उड़ा जा रहा है, प्रत्येक परमाणु न जाने किस आकर्षण में खिंचे चले जा रहे जैसे काल अनेक रूप में चल रहा है—यही तो ···
(एनिसाक्रीटीज का प्रवेश)

एनिसाक्रीटीज : महात्मन् !

दांड्यायन : चुप रहो, सब चले जा रहे हैं, तुम भी चले जाओ। अवकाश नहीं—अवसर नहीं।

एनिसाक्रीटीज : आपसे कुछ····

दांड्यायन : मुझसे कुछ मत कहो। कहो तो अपने-आप ही कहो, जिसे आवश्यकता होगी सुन लेगा। देखते हो कोई किसी की सुनता है? मैं कहता हूँ—सिंधु के एक बिंदु! धारा में न बहकर मेरी एक बात सुनने के लिए ठहर जा—वह सुनता है? ठहरता है? कदापि नहीं।

एनिसाक्रीटीज : परंतु देवपुत्र ने····

दांड्यायन : देवपुत्र ?

एनिसाक्रीटीज : देवपुत्र—जगद्विजेता सिकंदर ने आपका स्मरण किया है। आपका यश सुनकर आपसे कुछ उपदेश ग्रहण करने की उनकी बलवती इच्छा है।

दांड्यायन : (हँसकर) भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभासमात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते—दूत! वह किसी बलवान की इच्छा का क्रीड़ा-कंदुक नहीं बन सकता—तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नहीं पार कर सका, फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत को वंचित करता है। मैं लोभ से, सम्मान से या भय से किसी के पास नहीं जा सकता।

एनिसाक्रीटीज : महात्मन्! ऐसा क्यों? यदि न जाने पर देवपुत्र दंड दें?

दांड्यायन : मेरी आवश्यकतायें परमात्मा की विभूति—प्रकृति पूरी करती है। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा? समस्त आलोक, चैतन्य और प्राणशक्ति, प्रभु की दी हुई है—मृत्यु के द्वारा वही इसको लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्धा से बढ़कर दूसरा दंभ नहीं। मैं फल-मूल खाकर अंजलि से जलपान कर, तृण-शय्या पर

आँख बंद किये सो रहता हूँ। न मुझसे किसी को डर है और न मुझको डरने का कारण है। तुम यदि हठात् मुझे ले जाना चाहो तो केवल मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरे स्वतंत्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता।

एनिसाक्रीटीज : बड़े निर्भीक हो ब्राह्मण ! जाता हूँ, यही कह दूँगा (प्रस्थान) (एक ओर से अलका / दूसरी ओर से चाणक्य और चंद्रगुप्त का प्रवेश / सब वंदना करके सविनय बैठते हैं)

अलका : देव ! मैं गांधार छोड़कर जाती हूँ।

दांड्यायन : क्यों अलके, तुम गांधार की लक्ष्मी हो, ऐसा क्यों ?

अलका : ऋषे ! यवनों के हाथ स्वाधीनता बेच कर उनके दान से जीने की शक्ति मुझमें नहीं।

दांड्यायन : तुम उत्तरापथ की लक्ष्मी हो तुम अपना प्राण बचाकर कहाँ जाओगी ?—(कुछ विचारकर)—अच्छा जाओ देवि ! तुम्हारी आवश्यकता है। मंगलमय विभु अनेक अमंगलों में कौन-कौन कल्याण छिपाये रहता है, हम सब उसे नहीं समझ सकते। परंतु जब तुम्हारी इच्छा हो, निस्संकोच चली आना।

अलका : देव हृदय में संदेह है।

दांड्यायन : क्या अलका ?

अलका : ये दोनों महाशय, जो आपके सम्मुख बैठे हैं—जिनपर पहले मेरा पूर्ण विश्वास था, वे ही अब यवनों के अनुगत क्यों होना चाहते हैं ? (दांड्यायन चाणक्य की ओर देखता है और चाणक्य कुछ विचारने लगता है)

चंद्रगुप्त : देवि ! कृतज्ञता का बंधन अमोघ है।

चाणक्य : राजकुमारी ! उस परिस्थिति पर आपने विचार नहीं किया है, आपकी शंका निर्मूल है।

दांड्यायन : संदेह न करो अलका। कल्याणकृत् को पूर्ण विश्वासी होना पड़ेगा। विश्वास सुफल देगा, दुर्गति नहीं। (यवन सैनिक का प्रवेश)

यवन : देवपुत्र आपकी सेवा में आया चाहते हैं, क्या आज्ञा है ?

दांड्यायन : मैं क्या आज्ञा दूँ सैनिक । मेरा कोई रहस्य नहीं, निभृत-मंदिर नहीं, यहाँ पर सबका प्रत्येक क्षण स्वागत है । (सैनिक जाता है)

अलका : तो मैं जाती हूँ, आज्ञा हो ।

दांड्यायन : कोई आंतक नहीं है, अलका ठहरो तो ।

चाणक्य : महात्मन्, हम लोगों को क्या आज्ञा है ? किसी दूसरे समय उपस्थित हों ?

दांड्यायन : चाणक्य ! तुमको तो कुछ दिनों तक इस स्थान पर रहना होगा, क्योंकि सब विद्या के आचार्य होने पर भी तुम्हें उसका फल नहीं मिला—उद्वेग नहीं मिटा । अभी तक तुम्हारे हृदय में हलचल मची है, यह अवस्था संतोषजनक नहीं ।

(सिकंदर का सिल्यूकस, कार्नेलिया, एनिसाक्रीटीज इत्यादि सहचरों के साथ प्रवेश / सिकंदर नमस्कार करता है / सब बैठते हैं)

दांड्यायन : स्वागत अलक्षेंद्र ! तुम्हें सुबुद्धि मिले ।

सिकंदर : महात्मन् ! अनुगृहीत हुआ, परंतु मुझे कुछ और आशीर्वाद चाहिये ।

दांड्यायन : मैं और आशीर्वाद देने में असमर्थ हूँ क्योंकि इसके अतिरिक्त जितने आशीर्वाद होंगे, वे अमंगलजनक होंगे ।

सिकंदर : मैं आपके मुख से जय सुनने का अभिलाषी हूँ ।

दांड्यायन : जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे, हत्या, रक्तपात और अग्निकांड के लिए उपकरण जुटाने में मुझे आनंद नहीं । विजय-तृष्णा का अंत पराभव में होता है, अलक्षेंद्र ! राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयों से नहीं । इसलिए अपनी प्रजा के कल्याण में लगो ।

सिकंदर : अच्छा (चंद्रगुप्त को दिखाकर)—यह तेजस्वी युवक कौन है ?

सिल्यूकस : यह मगध का एक निर्वासित राजकुमार है ।

सिकंदर : मैं आपका स्वागत करने के लिए अपने शिविर में निमंत्रित करता हूँ ।

चंद्रगुप्त : अनुगृहीत हुआ। आर्य्य लोग किसी निमंत्रण को अस्वीकार नहीं करते।

सिकंदर : (सिल्यूकस से)—तुमसे इनका परिचय कब हुआ ?

सिल्यूकस : इनसे तो मैं पहले ही मिल चुका हूँ।

चंद्रगुप्त : आपका उपकार मैं भूला नहीं हूँ। आपने व्याघ्र से मेरी रक्षा की थी, जब मैं अचेत पड़ा था।

सिकंदर : अच्छा तो आप लोग पूर्व परिचित हैं। तब तो सेनापति, इनके आतिथ्य का भार आप ही पर रहा।

सिल्यूकस : जैसी आज्ञा।

सिकंदर : (महात्मा से)—महात्मन्! लौटती बार आपका फिर दर्शन करूँगा, जब भारत विजय कर लूँगा।

दांड्यायन : अलक्षेंद्र सावधान! (चंद्रगुप्त को दिखाकर) देखो यह भारत का भावी सम्राट् तुम्हारे सामने बैठा है।

(सब स्तब्ध होकर चंद्रगुप्त को देखते हैं और चंद्रगुप्त आश्चर्य से कार्नेलिया को देखने लगता है / एक दिव्य आलोक)

पटाक्षेप

द्वितीय अंक

१

(उद्भांड में सिंधु-तट पर ग्रीक-शिविर के पास वृक्ष के नीचे कार्नेलिया)

कार्नेलिया : सिंधु का यह मनोहर तट जैसे मेरी आँखों के सामने एक नया चित्रपट उपस्थित कर रहा है। इस वातावरण से धीरे-धीरे उठती हुई प्रशांत स्निग्धता जैसे हृदय में घुस रही है। लंबी यात्रा करके जैसे मैं वहीं पहुँच गयी हूँ—जहाँ के लिए चली थी। यह कितना निसर्ग सुंदर है—कितना रमणीय है! हाँ, आज वह भारतीय संगीत का पाठ—देखूँ भूल तो नहीं गयी ?

(गाती है)

अरुण यह मधुमय देश हमारा !

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर—मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनंत की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम-कुंभ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊँघते रहते जब—जग कर रजनी भर तारा।

अरुण यह मधुमय देश हमारा !

फिलिप्स : (प्रवेश करके) कैसा मधुर गीत है ! कार्नेलिया, तुमने तो भारतीय संगीत पर पूरा अधिकार कर लिया है, चाहे हम लोगों को भारत पर अधिकार करने में अभी विलंब हो।

कार्नेलिया : फिलिप्स ! यह तुम हो ! आज दारा की कन्या वाल्हीक जायगी ?

फिलिप्स : दारा की कन्या ! नहीं कुमारी, साम्राज्ञी कहो !

कार्नेलिया : असंभव है फिलिप्स ! ग्रीक लोग केवल देशों का विजय करके समझ लेते हैं कि लोगों के हृदय पर भी अधिकार कर लिया। वह देवकुमारी-सी सुंदर बालिका साम्राज्ञी कहने पर तिलमिला जाती है। उसे यह विश्वास है कि वह एक महान् साम्राज्य की लूट में मिली हुई दासी है—प्रणय-परिणीता पत्नी नहीं।

फिलिप्स : कुमारी ! प्रणय के सम्मुख क्या साम्राज्य तुच्छ है ?

कार्नेलिया : यदि प्रणय हो !

फिलिप्स : प्रणय तो मेरा हृदय पहचानता है।

कार्नेलिया : (हँसकर) ओहो ! यह तो बड़ी विचित्र बात है।

फिलिप्स : कुमारी, क्या तुम मेरे प्रेम की हँसी उड़ाती हो ?

कार्नेलिया : नहीं सेनापति ! तुम्हारा उत्कृष्ट प्रेम बड़ा भयानक होगा, उससे तो डरना चाहिये।

फिलिप्स : (गंभीर होकर) मैं पूछने आया हूँ कि आगामी युद्धों से दूर रहने के लिए शिविर की सब स्त्रियाँ स्कंधावार में सम्राज्ञी के साथ जा रही हैं, क्या तुम भी चलोगी ?

कार्नेलिया : नहीं संभवतः पिताजी को यहीं रहना होगा, इसलिये मेरे जाने की आवश्यकता नहीं।

फिलिप्स : (कुछ सोचकर) कुमारी ! न जाने फिर कब दर्शन हों, इसलिए एक बार इन कोमल करों को चूमने की आज्ञा दो।

कार्नेलिया : तुम मेरा अपमान करने का साहस न करो फिलिप्स ?

फिलिप्स : प्राण देकर भी नहीं कुमारी ! परंतु प्रेम अंधा है।

कार्नेलिया : तुम अपने अंधेपन से दूसरे को ठुकराने का लाभ नहीं उठा सकते फिलिप्स !

फिलिप्स : (इधर-उधर देखकर) यह नहीं हो सकता—(कार्नेलिया का हाथ पकड़ना चाहता है / वह चिल्लाती है—रक्षा करो ! रक्षा करो ! —चंद्रगुप्त प्रवेश करके फिलिप्स की गर्दन पकड़ कर दबाता है / वह गिरकर क्षमा माँगता है / चंद्रगुप्त छोड़ देता है)

कार्नेलिया : धन्यवाद आर्य्यवीर !

फिलिप्स : (लज्जित होकर) कुमारी, प्रार्थना करता हूँ कि इस घटना को भूल जाओ—क्षमा करो।

कार्नेलिया : क्षमा तो कर दूँगी—परंतु भूल नहीं सकती—फिलिप्स ! तुम अभी चले जाओ। (फिलिप्स नतमस्तक जाता है)

चंद्रगुप्त : चलिये, आपको शिविर के भीतर पहुँचा दूँ।

कार्नेलिया : पिताजी कहाँ हैं ? उनसे यह बात कह देनी होगी, यह घटना—नहीं तुम्हीं कह देना।

चंद्रगुप्त : ओह वे मुझे बुला गये हैं, मैं जाता हूँ, उनसे कह दूँगा।

कार्नेलिया : आप चलिये, मैं आती हूँ—(चंद्रगुप्त का प्रस्थान)—
एक घटना हो गई, फिलिप्स ने विनती की उसे भूल जाने की, किंतु उस घटना से और भी किसी का संबंध है, उसे कैसे भूल जाऊँ ! उन दोनों में श्रृंगार और रौद्र का संगम है वह भी आह—कितना आकर्षक है—कितना तरंगसंकुल है ! इसी चंद्रगुप्त के लिए न उस साधु ने भविष्यवाणी की है—भारत-सम्राट् होने की ! उसमें कितनी विनयशील वीरता है ! (प्रस्थान / कुछ सैनिकों के साथ सिकंदर का प्रवेश)

सिकंदर : विजय करने की इच्छा क्लांति से मिटती जा रही है। हम तो इतने बड़े आक्रमण के समारंभ में लगे हैं और यह देश जैसे सोया हुआ है, लड़ना जैसे इनके जीवन का उद्वेगजनक अंश नहीं। अपने ध्यान में दार्शनिक के सदृश निमग्न हैं, सुनते हैं—पौरव ने केवल झेलम के पास कुछ सेना प्रतिरोध करने के लिए या केवल देखने के लिए रख छोड़ी है। हम लोग जब पहुँच जायँगे तब वे लड़ लेंगे।

एनिसाक्रीटीज : मुझे तो ये लोग आलसी मालूम पड़ते हैं।

सिकंदर : नहीं-नहीं, यहाँ के दार्शनिक की परीक्षा तो तुम कर चुके—दांड्यायन को देखा न ! थोड़ा ठहरो, यहाँ के वीरों का भी परिचय मिल जायगा। यह अद्भुत देश है।

एनिसाक्रीटीज : परंतु आंभीक तो अपनी प्रतिज्ञा का सच्चा निकला—प्रबंध तो उसने अच्छा कर रखा है।

सिकंदर : लोभी है—सुना है कि उसकी एक बहन चिढ़कर संन्यासिनी हो गई है।

एनिसाक्रीटीज : मुझे विश्वास नहीं होता, इसमें कोई रहस्य होगा। पर एक बात कहूँगा, ऐसे शैल-पथ में साम्राज्य की समस्या हल करना कहाँ तक ठीक है ? क्यों न शिविर में ही चला जाय ?

सिकंदर : एनिसाक्रीटीज, फिर तो पर्सिपोलिस का राजमहल छोड़ने की आवश्यकता न थी, यहाँ एकांत में मुझे कुछ ऐसी बातों पर विचार करना है, जिन पर भारत-अभियान का भविष्य निर्भर है। मुझे उस नंगे ब्राह्मण की बातों से बड़ी आशंका हो रही है, भविष्यवाणियाँ प्राय: सत्य होती हैं। (एक ओर से फिलिप्स, आंभीक, दूसरी ओर से सिल्यूकस और चंद्रगुप्त का प्रवेश) कहो फिलिप्स ! तुम्हें क्या कहना है ?

फिलिप्स : आंभीक से पूछ लिया जाय।

आंभीक : यहाँ एक षड्यंत्र चल रहा है।

फिलिप्स : और उसके सहायक हैं सिल्यूकस।

सिल्यूकस : (क्रोध और आश्चर्य से)—इतनी नीचता ! अभी उस लज्जाजनक अपराध को प्रकट करना बाकी ही रहा—उलटा अभियोग ! प्रमाणित करना होगा फिलिप्स ! नहीं तो खड्ग इसका न्याय करेगा।

सिकंदर : उत्तेजित न हो सिल्यूकस !

फिलिप्स : तलवार तो कभी का न्याय कर देती, परंतु देवपुत्र का भी जान लेना आवश्यक था। नहीं तो ऐसे निर्लज्ज विद्रोही की हत्या करना—पाप नहीं पुण्य है। (सिल्यूकस तलवार खींचता है)

सिकंदर : तलवार खींचने से अच्छा होता कि तुम अभियोग को निर्मूल प्रमाणित करने की चेष्टा करते ! बताओ, तुमने चंद्रगुप्त के लिए अब क्या सोचा ?

सिल्यूकस : चंद्रगुप्त ने अभी-अभी कार्नेलिया को इस नीच फिलिप्स के हाथों अपमानित होने से बचाया है और मैं स्वयं यह अभियोग

आप के सामने उपस्थित करने वाला था।

सिकंदर : परंतु साहस नहीं हुआ, क्यों सिल्यूकस !

फिलिप्स : कैसे साहस होता—इनकी कन्या दांड्यायन के आश्रम पर भारतीय दर्शन पढ़ने जाती है, भारतीय संगीत सीखती है, वहीं पर विद्रोह-कारणी अलका भी आती है। और चंद्रगुप्त के लिए यह जनरव फैलाया गया है कि यही भारत का भावी सम्राट् होगा !

सिल्यूकस : रोक, अपनी अबाध गति से चलने वाली जीभ को रोक !

सिकंदर : ठहरो सिल्यूकस ! तुम अपने को विचाराधीन समझो हाँ, तो चंद्रगुप्त ! मुझे तुमसे कुछ पूछना है।

चंद्रगुप्त : क्या ?

सिकंदर : सुना है कि मगध का वर्त्तमान शासक एक नीच-जन्मा जारज संतान है। उसकी प्रजा असंतुष्ट है और तुम उस राज्य को हस्तगत करने का प्रयत्न कर रहे हो ?

चंद्रगुप्त : हस्तगत नहीं—उसका शासन बड़ा क्रूर हो गया है—मगध का उद्धार करना चाहता हूँ।

सिकंदर : और उस ब्राह्मण के कहने पर अपने सम्राट् होने का तुम्हें विश्वास हो गया होगा, जो परिस्थिति को देखते हुए असंभव भी नहीं जान पड़ता।

चंद्रगुप्त : असंभव क्यों नहीं ?

सिकंदर : हमारी सेना इसमें सहायता करेगी, फिर भी असंभव है ?

चंद्रगुप्त : मुझे आप से सहायता नहीं लेनी है।

सिकंदर : (क्रोध से) फिर इतने दिनों तक ग्रीक शिविर में रहने का तुम्हारा उद्देश्य ?

चंद्रगुप्त : एक सादर निमंत्रण—और, सिल्यूकस से उपकृत होने के कारण उनके अनुरोध की रक्षा ! परंतु मैं—यवनों को अपना शासक बनने को आमंत्रित करने नहीं आया हूँ।

सिकंदर : परंतु इन्हीं यवनों के द्वारा भारत जो आज तक कभी भी आक्रांत नहीं हुआ है, विजित किया जायगा।

चंद्रगुप्त : यह भविष्य के गर्भ में है उसके लिए अभी से इतनी उछलकूद मचाने की आवश्यकता नहीं ।

सिकंदर : अबोध युवक, तू गुप्तचर है !

चंद्रगुप्त : नहीं—कदापि नहीं । अवश्य ही यहाँ रहकर यवन-रणनीति से मैं कुछ परिचित हो गया हूँ । मुझे लोभ से पराभूत गांधार-राज़ आंभीक समझने की भूल न होनी चाहिये, मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ । परंतु यवन लुटेरों की सहायता से नहीं ।

सिकंदर : तुमको अपनी विपत्तियों से डर नहीं—ग्रीक लुटेरे हैं ?

चंद्रगुप्त : क्या यह झूठ है ? लूट के लोभ से हत्या-व्यवसायियों को एकत्र करके उन्हें वीर-सेना कहना, रण-कला का उपहास करना है ।

सिकंदर : (आश्चर्य और क्रोध से) सिल्यूकस !

चंद्रगुप्त : सिल्यूकस नहीं, चंद्रगुप्त से कहने की बात चंद्रगुप्त से कहनी चाहिये

आंभीक : शिष्टता से बातें करो ।

चंद्रगुप्त : स्वच्छ हृदय—भीरु कायरों की-सी वंचक-शिष्टता नहीं जानता । अनार्य्य ! देशद्रोही ! आंभीक ! चंद्रगुप्त रोटियों की लालच या घृणाजनक लोभ से सिकंदर के पास नहीं आया है ।

सिकंदर : बंदी कर लो इसे । (आंभीक, फिलिप्स एनिसाक्रिटीज टूट पड़ते हैं, चंद्रगुप्त असाधारण वीरता से तीनों को घायल करता हुआ निकल जाता है) सिल्यूकस !

सिल्यूकस : सम्राट् !

सिकंदर : यह क्या ?

सिल्यूकस : आपका अविवेक—चंद्रगुप्त एक वीर युवक है, यह आचरण उसकी भावी श्री और पूर्ण मनुष्यता का द्योतक है सम्राट् ! हम लोग जिस काम से आये हैं—उसे करना चाहिये फिलिप्स को अंतःपुर की महिलाओं के साथ वाल्हीक जाने दीजिये ।

सिकंदर : (सोचकर) अच्छा जाओ ।

(प्रस्थान)

२

(झेलम-तट के वन-पथ में चाणक्य, चंद्रगुप्त और अलका)

अलका : आर्य्य ! अब हम लोगों का क्या कर्त्तव्य है ?

चाणक्य : पलायन !

चंद्रगुप्त : व्यंग न कीजिये गुरुदेव ।

चाणक्य : दूसरा उपाय क्या है ?

अलका : है क्यों नहीं ?

चाणक्य : हो सकता है—(दूसरी ओर देखने लगता है) ।

चंद्रगुप्त : गुरुदेव !

चाणक्य : परिव्राजक होने की इच्छा है क्या ? यही एक सरल उपाय है ।

चंद्रगुप्त : नहीं, कदापि नहीं ! यवनों को प्रतिपद में बाधा देना मेरा कर्त्तव्य है और शक्ति-भर प्रयत्न करूँगा ।

चाणक्य : यह तो अच्छी बात है । परंतु सिंहरण अभी नहीं आया ।

चंद्रगुप्त : उसे समाचार मिलना चाहिये ।

चाणक्य : अवश्य मिला होगा ।

अलका : यदि न आ सके ?

चाणक्य : जब काली घटाओं से आकाश घिरा हो, रह-रहकर बिजली चमक जाती हो, पवन स्तब्ध हो, उमस बढ़ रही हो, और आषाढ़ के आरंभिक दिन हों, तब किस बात की संभावना करनी चाहिये ?

अलका : जल बरसने की ।

चाणक्य : ठीक उसी प्रकार—जब देश में युद्ध हो, मालव सिंहरण को समाचार मिला हो, तब उसके आने की भी निश्चित आशा है ।

चंद्रगुप्त : उधर देखिये—वे दो व्यक्ति कौन आ रहे हैं ।

(सिंहरण का सहारा लिये वृद्ध गांधार-राज का प्रवेश)

चाणक्य : राजन् !

गांधारराज : विभव की छलनाओं से वंचित एक वृद्ध ! जिसके पुत्र ने विश्वासघात किया हो और कन्या ने साथ छोड़ दिया हो—मैं वही—एक अभागा मनुष्य हूँ ।

अलका : पिताजी—(गले से लिपट जाती है)

गांधारराज : बेटी अलका—अरे तू कहाँ भटक रही है !

अलका : कहीं नहीं पिताजी आपके लिए छोटी-सी झोपड़ी बना रखी है, चलिये विश्राम कीजिये ।

गांधारराज : नहीं, तू मुझे अबकी झोपड़ी में बिठा कर चली जायगी । जो महलों को छोड़ चुकी है, उसका झोपड़ियों के लिए क्या विश्वास !

अलका : नहीं पिताजी, विश्वास कीजिये । (सिंहरण से) मालव-मैं कृतज्ञ हुई । (सिंहरण सस्मित नमस्कार करता है / अपने पिता के साथ अलका का प्रस्थान)

चाणक्य : सिंहरण ! तुम आ गये परंतु—

सिंहरण : किंतु-परंतु नहीं आर्य्य ! आप आज्ञा दीजिये हम लोग कर्त्तव्य में लग जायँ । विपत्तियों के बादल मँडरा रहे हैं ।

चाणक्य : उसकी चिंता नहीं । पौधे अंधकार में बढ़ते हैं और मेरी नीतिलता भी उसी भाँति विपत्ति-तम में लहलही होगी । हाँ, केवल शौर्य्य से काम नहीं चलेगा । एक बात समझ लो—चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों । बोलो, तुम लोग प्रस्तुत हो !

सिंहरण : हम लोग प्रस्तुत हैं ।

चाणक्य : तो युद्ध नहीं करना होगा ।

चंद्रगुप्त : फिर क्या ?

चाणक्य : सिंहरण और अलका को नट और नटी बनना होगा, चंद्रगुप्त बनेगा सँपेरा और मैं ब्रह्मचारी । देख रहे हो चंद्रगुप्त—पर्वतेश्वर की सेना में जो एक गुल्म अपनी छावनी अलग डाले है ! वे सैनिक कहाँ के हैं ?

चंद्रगुप्त : नहीं जानता ।

चाणक्य : अभी जानने की आवश्यकता भी नहीं । हम लोग उसी सेना के साथ अपने स्वाँग रखेंगे । वहीं हमारे खेल होंगे । चलो, हम लोग चलें, देखो—नवीन गुल्म का युवक सेनापति जा रहा है ।

(सबका प्रस्थान / पुरुष-वेष में कल्याणी और सेनापति का प्रवेश)

कल्याणी : सेनापति ! मैंने दुस्साहस करके पिताजी को चिढ़ा तो दिया, पर अब कोई मार्ग बताओ, जिससे मैं सफलता प्राप्त कर सकूँ । पर्वतेश्वर को नीचा दिखलाना ही मेरा प्रधान उद्देश्य है ।

सेनापति : राजकुमारी !

कल्याणी : सावधान—सेनापति !

सेनापति : क्षमा हो, अब भूल न होगी । हाँ, तो केवल एक मार्ग है ।

कल्याणी : वह क्या ?

सेनापति : घायलों की शुश्रूषा का भार ले लेना ।

कल्याणी : मगध सेनापति ! तुम कायर हो ।

सेनापति : तब जैसी आज्ञा हो !—(स्वगत्) स्त्री की अधीनता वैसे ही बुरी होती है, तिस पर युद्धक्षेत्र में ! भगवान् ही बचावें ।

कल्याणी : मेरी इच्छा है कि जब पर्वतेश्वर यवन सेना द्वारा चारों ओर से घिर जाय, उस समय उसका उद्धार करके अपना मनोरथ पूर्ण करूँ ।

सेनापति : बात तो अच्छी है ।

कल्याणी : और तब तक हम लोगों की रक्षित सेना—(रुककर देखते हुए) यह लो पर्वतेश्वर इधर ही आ रहा है ।

(पर्वतेश्वर का युद्ध-वेश में प्रवेश)

पर्वतेश्वर : (दूर दिखलाकर) वह किस गुल्म का शिविर है युवक !

कल्याणी : मगध-गुल्म का महाराज !

पर्वतेश्वर : मगध की सेना ! असंभव ! उसने तो रण-निमंत्रण ही अस्वीकृत किया था ।

कल्याणी : परंतु मगध की बड़ी सेना में से एक छोटा-सा वीर युवकों का दल इस युद्ध के लिए परम उत्साहित था । स्वेच्छा से उसने इस युद्ध में योग दिया है ।

पर्वतेश्वर : प्राच्य मनुष्यों में भी इतना उत्साह ! (हँसता है)

कल्याणी : महाराज, उत्साह का निवास किसी विशेष दिशा में नहीं है ।

पर्वतेश्वर : (हँसकर) प्रगल्भ हो युवक । परंतु, जब रण नाचने लगता है, तब

भी यह तुम्हारा उत्साह—बना रहे तो मानूँगा । हाँ तुम बड़े सुंदर सुकुमार युवक हो, इसलिए साहस न कर बैठना । तुम मेरी रक्षित सेना के साथ रहो तो अच्छा, समझा न ।

कल्याणी : जैसी आज्ञा ।

(चंद्रगुप्त, सिंहरण और अलका का वेष बदले हुए प्रवेश)

सिंहरण : खेल देख लो खेल ! ऐसा खेल—जो कभी न देखा हो न सुना !

पर्वतेश्वर : नट ! इस समय खेल देखने का अवकाश नहीं ।

अलका : क्या युद्ध के पहले ही घबरा गये, सेनापति ! वह भी तो वीरों का खेल ही है ।

पर्वतेश्वर : बड़ी ढीठ है !

चंद्रगुप्त : न हो तो नागों का ही दर्शन कर लो !

कल्याणी : बड़ा कौतुक है महाराज ! इन नागों को ये लोग किस प्रकार वश कर लेते हैं !

चंद्रगुप्त : (संभ्रम से) महाराज हैं—तब तो अवश्य पुरस्कार मिलेगा !

(सँपेरों की सी चेष्टा करता है/पिटारी खोलकर साँप निकालता है)

कल्याणी : आश्चर्य है ! मनुष्य ऐसे कुटिल विषधरों को भी वश कर सकता है परंतु मनुष्य को नहीं ।

पर्वतेश्वर : नट ! नागों पर तुम लोगों का अधिकार कैसे हो जाता है ?

चंद्रगुप्त : मंत्र, महौषधि के भाले से बड़े-बड़े मत्त नाग वशीभूत होते हैं ।

पर्वतेश्वर : भाले से ?

सिंहरण : हाँ महाराज ! वैसे ही जैसे भालों से मदमत्त मातंग !

पर्वतेश्वर : तुम लोग कहाँ से आ रहे हो ?

सिंहरण : ग्रीकों के शिविर से ।

चंद्रगुप्त : उनके भाले भारतीय हाथियों के लिए वज्र ही हैं ।

पर्वतेश्वर : तुम लोग आंभीक के चर तो नहीं हो ?

सिंहरण : रातों-रात यवन-सेना वितस्ता के पार हो गयी है—समीप है, महाराज ! सचेत हो जाइये ।

पर्वतेश्वर : मगधनायक ! इन लोगों को बंदी करो ।

(चंद्रगुप्त कल्याणी को ध्यान से देखता है)

अलका : उपकार का भी यह फल है !

चंद्रगुप्त : हम लोग बंदी ही हैं। परंतु रण-व्यूह से सावधान होकर सैन्यपरिचालन कीजिये। जाइये महाराज ! यवन-रणनीति भिन्न है।

(पर्वतेश्वर उद्विग्न भाव से जाता है)

कल्याणी : (सिंहरण से) चलो, हमारे शिविर में ठहरो, फिर बताया जायगा।

चंद्रगुप्त : मुझे कुछ कहना है।

कल्याणी : अच्छा, तुम लोग आगे चलो। (सिंहरण इत्यादि आगे बढ़ते हैं)

चंद्रगुप्त : इस युद्ध में पर्वतेश्वर की पराजय निश्चित है।

कल्याणी : परंतु तुम कौन हो—(ध्यान से देखती हुई)—मैं तुमको पहचान····

चंद्रगुप्त : मगध का एक सँपेरा !

कल्याणी : हूँ ! और भविष्यवक्ता भी ?

चंद्रगुप्त : मुझे मगध की पताका के सम्मान की····

कल्याणी : कौन ! चंद्रगुप्त तो नहीं।

चंद्रगुप्त : अभी तो एक सँपेरा हूँ राजकुमारी कल्याणी।

कल्याणी : (एक क्षण चुप रहकर) हम दोनों को चुप रहना चाहिये—चलो।

(दोनों का प्रस्थान)

३

(युद्ध क्षेत्र में सैनिकों के साथ पर्वतेश्वर)

पर्वतेश्वर : सेनापति, भूल हुई।

सेनापति : हाथियों ने ऊधम मचा रखा है और रथी सेना भी व्यर्थ-सी हो रही है।

पर्वतेश्वर : सेनापति, युद्ध में जय या मृत्यु—दो में से एक होनी चाहिये।

सेनापति : महाराज, सिकंदर को वितस्ता पर यह अच्छी तरह विदित हो गया है कि हमारे खड्गों मे कितनी धार है। स्वयं सिकंदर का अश्व मारा गया और राजकुमार के भाले की चोट सिकंदर न संभाल सका।

पर्वतेश्वर : प्रशंसा का समय नहीं—शीघ्रता करो। मेरा रण-गज प्रस्तुत हो, मैं स्वयं गजसेना का संचालन करूँगा—चलो।

(सब जाते हैं/कल्याणी और चंद्रगुप्त का प्रवेश)

कल्याणी : चंद्रगुप्त, तुम्हें यदि मगध सेना विद्रोही जानकर बंदी बनावे ?

चंद्रगुप्त : बंदी सारा देश है राजकुमारी, दारुण द्वेष से सब जकड़े हैं। मुझको इसकी चिंता भी नहीं। परंतु राजकुमारी का युद्धक्षेत्र में आना अनोखी बात है।

कल्याणी : केवल तुम्हे देखने के लिए ! मैं जानती थी कि तुम युद्ध में अवश्य सम्मिलित होगे और मुझे भ्रम हो रहा है कि तुम्हारे निर्वासन के भीतरी कारणों में एक मैं भी हूँ।

चंद्रगुप्त : परंतु राजकुमारी, मेरा हृदय देश की दुर्दशा से व्याकुल है। इस ज्वाला में स्मृति-लता मुरझा गयी है

कल्याणी : चंद्रगुप्त !

चंद्रगुप्त : राजकुमारी ! समय नहीं ! वह देखो—भारतीयों के प्रतिकूल दैव ने मेघमाला का सृजन किया है। रथ बेकार होंगे और हाथियों का प्रत्यावर्त्तन तो और भी भयानक हो रहा है

कल्याणी : तब ! मगध-सेना तुम्हारे अधीन है, जैसा चाहो करो !

चंद्रगुप्त : पहले उस पहाड़ी पर सेना एकत्र होनी चाहिये। शीघ्र आवश्यकता होगी। पर्वतेश्वर की पराजय को रोकने की चेष्टा कर देखूँ।

कल्याणी : चलो ! (मेघों की गड़गड़ाहट/दोनों जाते हैं/एक ओर से सिल्यूकस, दूसरी ओर से पर्वतेश्वर का ससैन्य प्रवेश/युद्ध)

सिल्यूकस : पर्वतेश्वर ! अस्त्र रख दो।

पर्वतेश्वर : यवन ! सावधान ! बचाओ अपने को।

(तुमुल युद्ध, घायल होकर सिल्यूकस का हटना)

पर्वतेश्वर : सेनापति ! देखो, उन कायरों को रोको ! उनसे कह दो कि आज रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय-पराजय की चिंता नहीं। इन्हें बतला देना होगा कि भारतीय लड़ना जानते

हैं। बादलों से पानी की जगह बज्र बरसें, सारी गजसेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथ हों, रक्त के नाले धमनियों से बहें, परंतु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्वर के लिए असंभव है। धर्मयुद्ध में प्राण-भिक्षा माँगने वाले भिखारी हम नहीं। जाओ, उन भगोड़ों से एक बार जननी के स्तन्य की लज्जा के नाम पर रुकने के लिये कहो। कहो कि मरने का क्षण एक ही है—जाओ।

(सेनापति का प्रस्थान/सिंहरण और अलका का प्रवेश)

सिंहरण : महाराज ! यह स्थान सुरक्षित नहीं। उस पहाड़ी पर चलिये।

पर्वतेश्वर : तुम कौन हो युवक !

सिंहरण : एक मालव !

पर्वतेश्वर : मालव के मुख से ऐसा कभी नहीं सुना गया—मालव ! खड्ग-क्रीड़ा देखनी हो तो खड़े रहो। डर लगता हो तो पहाड़ी पर जाओ।

सिंहरण : महाराज, यवनों का दल आ रहा है।

पर्वतेश्वर : आने दो। तुम हट जाओ।

(फिलिप्स का प्रवेश/सिंहरण का भीषण युद्ध/फिलिप्स का हटना/सिल्यूकस फिलिप्स का पुनः प्रवेश, सिंहरण का घायल होना और संकेत करना/पर्वतेश्वर का युद्ध और लड़खड़ा कर गिरने की चेष्टा/चंद्रगुप्त और कल्याणी का सैनिकों के साथ पहुँचना/दूसरी ओर से सिकंदर का आना/युद्ध बंद करने के सिकंदर की आज्ञा)

चंद्रगुप्त : युद्ध होगा !

सिकंदर : कौन, चंद्रगुप्त

चंद्रगुप्त : हाँ देवपुत्र !

सिकंदर : किससे युद्ध ? मुमूर्षु—घायल पर्वतेश्वर—वीर पर्वतेश्वर से ! कदापि नहीं ! आज मुझे जय-पराजय का विचार नहीं—मैंने एक अलौकिक वीरता का स्वर्गीय दृश्य देखा है। होमर की कविता में पढ़ी हुई—जिस कल्पना से मेरा हृदय भरा है—उसे यहाँ प्रत्यक्ष देखा ! भारतीय वीर पर्वतेश्वर ! अब मैं तुम्हारे साथ कैसा

व्यवहार करूँ ।

पर्वतेश्वर : (रक्त पोंछते हुए) जैसा एक नरपति अन्य नरपति के साथ करता है, सिकंदर !

सिकंदर : मैं तुमसे मैत्री करना चाहता हूँ । विस्मय-विमुग्ध होकर तुम्हारी सराहना किये बिना मैं नहीं रह सकता---धन्य ! आर्य्य-वीर !

पर्वतेश्वर : मैं तुमसे युद्ध न करके मैत्री भी कर सकता हूँ ।

चंद्रगुप्त : पंचनद-नरेश ! आप क्या कर रहे हैं समस्त मागध सेना आपकी प्रतीक्षा में है, युद्ध होने दीजिये ।

कल्याणी : इन थोड़े-से अर्द्धजीव यवनों को विचलित करने के लिए पर्याप्त मागध सेना है । महाराज ! आज्ञा दीजिये !

पर्वतेश्वर : नहीं युवक ! वीरता भी एक सुंदर कला है, उस पर मुग्ध होना आश्चर्य की बात नहीं, मैंने वचन दे दिया, अब सिकंदर चाहे हटें ।

सिकंदर : कदापि नहीं ।

कल्याणी : (शिरस्त्राण फेंककर) जाती हूँ क्षत्रिय पर्वतेश्वर ! तुम्हारे पतन में रक्षा न कर सकी, बड़ी निराशा हुई ।

पर्वतेश्वर : तुम कौन हो ?

चंद्रगुप्त : मगध की राजकुमारी कल्याणी देवी !

पर्वतेश्वर : ओह पराजय ! निकृष्ट पराजय !

(चंद्रगुप्त और कल्याणी का प्रस्थान/सिकंदर आश्चर्य से देखता है/ अलका घायल सिंहरण को उठाना चाहती है / आंभीक आकर दोनों को बंदी करता है)

पर्वतेश्वर : यह क्या ?

आंभीक : इनको अभी बंदी रखना आवश्यक है ।

पर्वतेश्वर : तो यह लोग मेरे यहाँ रहेंगे ।

सिकंदर : पंचनद-नरेश की जैसी इच्छा हो ।

४

(मालव में सिंहरण के उद्यान का एक अंश)

मालविका : (प्रवेश करके) फूल हँसते हुए आते हैं, मकरंद गिराकर मुरझा जाते हैं, आँसू से धरणी को भिगोकर चले जाते हैं ! एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निःश्वास फेंककर चला जाता है । क्या पृथ्वी-तल रोने के लिए ही है ? नहीं, सबके लिए एक ही नियम तो नहीं ! कोई रोने के लिए है—तो कोई हँसने के लिए—(विचारती हुई) आजकल तो छुट्टी-सी है, परंतु विदेशियों का एक विचित्र-सा दल यहाँ ठहरा है, उनमें से एक को तो देखते ही डर लगता है । लो देखो—वह युवक आ गया। (सिर झुकाकर फूल सँवारने लगती है / ऐंद्रजालिक के वेश में चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चंद्रगुप्त : मालविका !

मालविका : क्या आज्ञा है !

चंद्रगुप्त : तुम्हारे नागकेशर की क्यारी कैसी है ?

मालविका : हरी-भरी ।

चंद्रगुप्त : आज कुछ खेल भी होगा—देखोगी !

मालविका : खेल तो नित्य देखती हूँ । न जाने कहाँ से लोग आते हैं और कुछ-न-कुछ अभिनय करते हुए चले जाते हैं। इसी उद्यान के कोने से बैठी हुई सब देखा करती हूँ ।

चंद्रगुप्त : मालविका, तुमको कुछ गाना आता है ।

मालविका : आता तो है, परंतु........

चंद्रगुप्त : परंतु क्या ?

मालविका : युद्धकाल है—देश में रण-चर्चा छिड़ी है । आजकल मालव-स्थान में कोई गाता-बजाता नहीं ।

चंद्रगुप्त : रण-भेरी के पहले यदि मधुर मुरली की एक तान सुन लूँ, तो हानि न होगी—मालविका ! न जाने क्यों आज ऐसी कामना जाग पड़ी है ।

मालविका : अच्छा सुनिये—

चाणक्य : (सहसा प्रवेश कर) छोकरियों से बातें करने का समय नहीं है मौर्य्य !

चंद्रगुप्त : नहीं गुरुदेव ! मैं आज ही विपाशा के तट से आया हूँ, यवन-शिविर भी घूमकर आया हूँ ।

चाणक्य : क्या देखा ?

चंद्रगुप्त : समस्त यवन-सेना शिथिल हो गई है । मगध का इंद्रजाली जानकर मुझसे यवन-सैनिकों ने वहाँ की सेना का हाल पूछा । मैंने कहा, पंचनद के सैनिकों से भी दुर्धर्ष कई लक्ष रण-कुशल योद्धा शतद्रु-तट पर तुम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं । यह सुनकर कि नंद के पास कई लाख सेना है, उन लोगों में आतंक छा गया और एक प्रकार का विद्रोह फैल गया ।

चाणक्य : हाँ ! तब क्या हुआ—केलिस्थनीज के अनुयायियों ने क्या किया ?

चंद्रगुप्त : उनकी उत्तेजना से सैनिकों ने विपाशा को पार करना अस्वीकार कर दिया और यवन—देश लौट चलने के लिए आग्रह करने लगे । सिकंदर के बहुत अनुरोध करने पर भी वे युद्ध के लिए सहमत नहीं हुए । इसलिए रावी के जलमार्ग से लौटने का निश्चय हुआ है । अब उनकी इच्छा युद्ध की नहीं है ।

चाणक्य : और क्षुद्रकों का क्या समाचार है ?

चंद्रगुप्त : वे भी प्रस्तुत हैं । मेरी इच्छा है कि इस जगद्विजेता का ढोंग करने वाले को एक पाठ पराजय का भी पढ़ा दिया जाय । परंतु इस समय यहाँ सिंहरण का होना अत्यंत आवश्यक है ।

चाणक्य : अच्छा, देखा जायगा । संभवतः स्कंधावार में मालवों की युद्ध-परिषद् होगी । अत्यंत सावधानी से काम करना होगा । मालवों को मिलाने का पूरा प्रयत्न तो हमने कर लिया है ।

चंद्रगुप्त : चलिये, मैं, अभी आया ! (चाणक्य का प्रस्थान)

मालविका : यह खेल तो बड़ा भयानक होगा मागध !

चंद्रगुप्त : कुछ चिंता नहीं, अभी कल्याणी नहीं आयी ? (एक सैनिक का प्रवेश)

चंद्रगुप्त : क्या है ?

सैनिक : सेनापति ! मगध-सेना के लिए क्या आज्ञा है ?

चंद्रगुप्त : विपाशा और शतद्रु के बीच जहाँ अत्यंत संकीर्ण भू-भाग है वहीं अपनी सेना रखो। स्मरण रखना कि विपाशा पार करने पर मगध का साम्राज्य ध्वंस करना यवनों के लिए बड़ा साधारण काम हो जायगा। सिकंदर की सेना के सामने इतना विराट् प्रदर्शन होना चाहिए कि वह भयभीत हो।

सैनिक : अच्छा, राजकुमारी ने पूछा है कि आप कब तक आवेंगे ? उनकी इच्छा मालव में ठहरने की नहीं है।

चंद्रगुप्त : राजकुमारी से मेरा प्रणाम कहना और कह देना कि मैं सेनापति का पुत्र हूँ, युद्ध ही हमारी आजीविका है। क्षुद्रकों की सेना का मैं सेनापति होने के लिए आमंत्रित किया गया हूँ। इसलिए मैं यहाँ रहकर भी मगध की अच्छी सेवा कर सकूँगा।

सैनिक : जैसी आज्ञा ! (जाता है)

चंद्रगुप्त : (कुछ सोचकर) सैनिक ! (सैनिक लौट आता है)

सैनिक : क्या आज्ञा है ?

चंद्रगुप्त : राजकुमारी से कह देना कि मगध जाने की उत्कट इच्छा होने पर भी वे सेना को साथ न ले जायँ।

सैनिक : इसका उत्तर भी लेकर आना होगा ?

चंद्रगुप्त : नहीं। (सैनिक का प्रस्थान)

मलविका : मालव में बहुत-सी बातें मेरे देश से विपरीत हैं। इनकी युद्धपिपासा बलवती है—फिर युद्ध !

चंद्रगुप्त : तो क्या तुम इस देश की नहीं हो ?

मालविका : नहीं, मैं सिंधु की रहने वाली हूँ, आर्य्य ! वहाँ युद्ध—विग्रह नहीं, न्यायालयों की आवश्यकता नहीं। प्रचुर स्वर्ण के रहते भी कोई उसका उपयोग नहीं। इसलिए अर्थमूलक विवाद कभी उठते ही नहीं। मनुष्य के प्राकृतिक जीवन का सुंदर पालना—मेरा सिंधुदेश है।

चंद्रगुप्त : तो यहाँ कैसे चली आयी हो ?

मालविका : मेरी इच्छा हुई कि और देशों को भी देखूँ। तक्षशिला में राज-

कुमारी अलका से कुछ ऐसा स्नेह हुआ कि वहाँ रहने लगी। उन्होंने मुझे घायल सिंहरण के साथ यहाँ भेज दिया। कुमार सिंहरण बड़े सहृदय हैं। परंतु मागध, तुमको देखकर तो मैं चकित हो जाती हूँ। कभी इंद्रजाली कभी कुछ! भला इतना सुंदर रूप—तुम्हें विकृत करने की क्या आवश्यकता है ?

चंद्रगुप्त : शुभे, मैं तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ। तुम इन बातों को पूछकर क्या करोगी! (प्रस्थान)

मालविका : स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है। परंतु बिछलने का भय भी होता है। अद्भुत युवक है। देखूँ कुमार सिंहरण कब आते हैं।

८

(बंदीगृह में घायल सिंहरण और अलका)

अलका : अब तो चल फिर सकोगे ?

सिंहरण : हाँ अलका, परंतु बंदीगृह में चलना-फिरना व्यर्थ है।

अलका : नहीं मालव, बहुत शीघ्र स्वस्थ होने की चेष्टा करो। तुम्हारी आवश्यकता है।

सिंहरण : क्या ?

अलका : सिकंदर की सेना रावी पार हो रही है पंचनद से संधि हो गई, अब यवन लोग निश्चिंत होकर आगे बढ़ना चाहते हैं। आर्य्य चाणक्य का एक चर यह संदेश सुना गया है।

सिंहरण : कैसे ?

अलका : क्षपणक-वेश में गीत गाता हुआ—भीख माँगता आया था, संकेत से अपना तात्पर्य कह सुनाया।

सिंहरण : तो क्या आर्य्य चाणक्य जानते हैं कि मैं यहाँ बंदी हूँ।

अलका : हाँ, आर्य्य चाणक्य इधर की सब घटनाओं को जानते है।

सिंहरण : तब तो मालव पर शीघ्र ही आक्रमण होगा!

अलका : कोई डरने को बात नहीं, क्योंकि चंद्रगुप्त को साथ लेकर आर्य्य ने वहाँ पर एक बड़ा भारी कार्य किया है। क्षुद्रकों और मालवों में

संधि हो गई है। चंद्रगुप्त को उनकी सम्मिलित सेना का सेनापति बनाने का उद्योग हो रहा है।

सिंहरण : (उठकर) तब तो अलका--मुझे शीघ्र पहुँचना चाहिये।

अलका : परंतु तुम बंदी हो।

सिंहरण : जिस तरह हो सके--अलके मुझे पहुँचाओ।

अलका : (कुछ सोचने लगती है) तुम जानते हो कि मैं क्यों बंदिनी हूँ ?

सिंहरण : क्यों ?

अलका : आंभीक से पर्वतेश्वर की संधि हो गयी है और स्वयं सिकदर ने विरोध मिटाने के लिए पर्वतेश्वर की भगिनी से आंभीक का ब्याह करा दिया है, परंतु आंभीक ने यह जानकर भी कि मैं यहँ बंदिनी हूँ, मुझे छुड़ाने का प्रयत्न नहीं किया उसकी भीतरी इच्छा थी, कि पर्वतेश्वर की कई रानियों में से एक मैं भी हो जाऊँ, परंतु मैंने अस्वीकार कर दिया।

सिंहरण : अलका, तब क्या करना होगा ?

अलका : यदि मैं पर्वतेश्वर से ब्याह करना स्वीकार करूँ—तो संभव है तुमको छुड़ा दूँ।

सिंहरण : मैं—अलका—मुझसे पूछती हो ?

अलका : दूसरा उपाय क्या है ?

सिंहरण : मेरा सिर घूम रहा है—अलका—तुम पर्वतेश्वर की प्रणयिनी बनोगी ! अच्छा होता कि इसके पहले मैं ही न रह जाता।

अलका : क्यों मालव, इसमें तुम्हारी कुछ हानि है ?

सिंहरण : कठिन परीक्षा न लो अलका ! बड़ा दुर्बल हूँ। मैंने जीवन और मरण में तुम्हारा संग न छोड़ने का प्रण किया है।

अलका : मालव, देश की स्वतंत्रता तुम्हारी आशा में है।

सिंहरण : और तुम पंचनद की अधीश्वरी बनने की आशा में ! तब, मुझे रणभूमि में प्राण देने की आज्ञा दो।

अलका : (हँसती हुई) चिढ़ गये। आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है कि थोड़ी देर पंचनद का सूत्र-संचालन करने के लिए मैं यहाँ की रानी बन जाऊँ।

सिंहरण : यह भी कोई हँसी है !

अलका : बंदी ! जाओ सो रहो—मैं आज्ञा देती हूँ । (सिंहरण का प्रस्थान) सुंदर निश्छल हृदय तुमसे हँसी करना भी अन्याय है परंतु व्यथा को दबाना पड़ेगा । सिंहरण को मालव भेजने के लिए प्रणय के साथ अत्याचार करना होगा । (गाती है)

प्रथम यौवन-मदिरा से मत्त, प्रेम करने की थी परवाह,
और किसको देना है हृदय, चीन्हने की न तनिक थी चाह ।
बेंच डाला था हृदय अमोल, आज वह माँग रहा था दाम,
वेदना मिली तुला पर तोल, उसे लोभी ने ली बेकाम ।
उड़ रही है हृत्पथ में धूल, आ रहे हो तुम बे-परवाह,
करूँ क्या दृग-जल से छिड़काव, बनाऊँ मै यह बिछलन राह !
सँभलते धीरे-धीरे चलो, इसी मिस तुमको लगे बिलंब,
सफल हो जीवन की सब साध, मिले आशा को कुछ अवलंब ।
विश्व की सुषमाओं का स्रोत, बह चलेगा आँखों की राह,
और दुर्लभ होगी पहचान, रूप-रत्नाकर भरा अथाह ।

(पर्वतेश्वर का प्रवेश)

पर्वतेश्वर : सुंदरी अलका—तुम कब तक यहाँ रहोगी ?

अलका : यह तो बंदी बनाने वाले की इच्छा पर निर्भर है ।

पर्वतेश्वर : कौन तुम्हे बंदी कहता है ? यह तुम्हारा अन्याय है—अलका ! चलो, सुसज्जित राजभवन तुम्हारी प्रत्याशा में है ।

अलका : नहीं पौरव, मैं राजभवनों से डरती हूँ, क्योंकि—उनके लोभ से मनुष्य आजीवन मानसिक कारावास भोगता है ।

पर्वतेश्वर : इसका तात्पर्य ?

अलका : कोमल शय्या पर लेटे रहने की प्रत्याशा में स्वतंत्रता का भी विसर्जन करना पड़ता है—यही उन विलासपूर्ण राजभवनों का प्रलोभन है ।

पर्वतेश्वर : व्यंग न करो अलका । पर्वतेश्वर ने जो कुछ किया है, वह भारत का एक-एक बच्चा जानता है । परंतु दैव प्रतिकूल हो—तब क्या किया जाय ?

अलका : मैं मानती हूँ, परंतु आपकी आत्मा इसे मानने के लिए प्रस्तुत न होगी। हम लोग—जो आपके लिए, देश के लिए, प्राण देनेको प्रस्तुत थे, केवल यवनों को प्रसन्न करने के लिए—बंदी किये गये।

पर्वतेश्वर : बंदी कैसे ?

अलका : बंदी नहीं तो और क्या ? सिंहरण, जो आपके साथ युद्ध करते घायल हुआ है, आज तक वह क्यों रोका गया ? पंचनद-नरेश आपका न्याय अत्यंत सुंदर है न !

पर्वतेश्वर : कौन कहता है सिंहरण बंदी है ? उस वीर की मैं प्रतिष्ठा करता हूँ अलका, परंतु उससे द्वंद्व युद्ध करना चाहता हूँ।

अलका : क्यों ?

पर्वतेश्वर : क्यों कि अलका के दो प्रेमी नहीं हो सकते।

अलका : महाराज, यदि भूपालों का-सा व्यवहार न माँगकर आप सिकंदर से द्वंद्व-यद्ध माँगते, तो अलका को विचार करने का अवसर मिलता।

पर्वतेश्वर : यदि मैं सिकंदर का विपक्षी बन जाऊँ—तो तुम मुझे प्यार करोगी अलका ? सच कहो।

अलका : तब विचार करूँगी, पर वैसी संभावना नहीं।

पर्वतेश्वर : क्या प्रमाण चाहती हो अलका ?

अलका : सिंहरण के देश पर यवनों का आक्रमण होने वाला है, वहाँ तुम्हारी सेना यवनों की सहायक न बने, और सिंहरण अपने मालव की रक्षा के लिए मुक्त किया जाय।

पर्वतेश्वर : मुझे स्वीकार है।

अलका : तो मैं भी राजभवन में चलने के लिए प्रस्तुत हूँ, परंतु एक नियम पर !

पर्वतेश्वर : वह क्या ?

अलका : यही कि सिकंदर के भारत में रहने तक मैं स्वतंत्र रहूँगी। पंचनद नरेश, यह दस्यु-दल बरसाती बाढ़ के समान निकल जायगा विश्वास रखिये।

पर्वतेश्वर : सच कहती हो अलका ! अच्छा, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम जैसा

कहोगी, वैसा ही होगा ! सिंहरण के लिए रथ आवेगा और तुम्हारे लिए शिविका । देखो भूलना मत । (चिंतित भाव से प्रस्थान)

६

(मालवों के स्कंधावार में युद्ध-परिषद्)

देवबल : परिषद् के सम्मुख मैं यह विज्ञप्ति उपस्थित करता हूँ कि यवन-युद्ध के लिए जो संधि मालव-क्षुद्रकों में हुई है, उसे सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि दोनों गणों की एक सम्मिलित सेना बनाई जाय और उसके सेनापति क्षुद्रकों के मनोनीत सेनापति मागध चंद्रगुप्त ही हों। उन्हीं की आज्ञा से सैन्य-संचालन हो ।

(सिंहरण का प्रवेश—परिषद में हर्ष)

सब : कुमार सिंहरण की जय !

नागदत्त : मगध एक साम्राज्य है । लिच्छवि और वृजि—गणतंत्र को कुचलने वाले मगध का निवासी हमारी सेना का संचालन करे—यह अन्याय है । मैं इसका विरोध करता हूँ ।

सिंहरण : मैं मालव-सेना का बलाधिकृत हूँ । मुझे सेना का अधिकार परिषद् ने प्रदान किया है और साथ ही मैं संधि-विग्रहिक का भी कार्य करता हूँ—पंचनद की परिस्थिति मैं स्वयं देख आया हूँ और मागध चंद्रगुप्त को भी भली भाँति जानता हूँ । मैं चंद्रगुप्त के आदेशानुसार युद्ध चलाने के लिए सहमत हूँ । और भी मेरी एक प्रार्थना है—उत्तरापथ के विशिष्ट राजनीतिज्ञ आर्य्य चाणक्य के गंभीर राजनीतिक विचार सुनने पर आप लोग अपना कर्त्तव्य निश्चित करें ।

गणमुख्य : आर्य्य चाणक्य व्यासपीठ पर आवें ।

चाणक्य : (व्यासपीठ से) उत्तरापथ के प्रमुख गणतंत्र मालव राष्ट्र की परिषद् का मैं अनुगृहीत हूँ कि ऐसे गंभीर अवसर पर मुझे कुछ कहने के लिए उसने आमंत्रित किया । गणतंत्र और एक-राज्य का प्रश्न यहाँ

नहीं, क्योंकि लिच्छवियों और वृजियों का अपकार करने वाले मगध का एक-राज्य, शीघ्र ही गणतंत्र में परिवर्त्तित होने वाला है। युद्ध-काल में एक नायक की आज्ञा माननी पड़ती है। वहाँ शलाका ग्रहण करके शस्त्र-प्रहार करना असंभव है। अतएव सेना का एक नायक तो होना ही चाहिए। और यहाँ की परिस्थिति में चंद्रगुप्त से बढ़कर इस कार्य के लिए दूसरा व्यक्ति न होगा। वितस्ता-प्रदेश के अधीश्वर पर्वतेश्वर के यवनों से संधि करने पर भी चंद्रगुप्त के ही उद्योग का यह फल है कि पर्वतेश्वर की सेना यवन-सहायता को न आवेगी। उसी के प्रयत्न से यवन-सेना में विद्रोह भी हो गया, जिससे उसका आगे बढ़ना असंभव हो गया है। परंतु सिकंदर की कूटनीति प्रत्यावर्तन में भी विजय चाहती है—वह अपनी विद्रोहिणी सेना को स्थल-मार्ग से लौटने की आज्ञा देकर नौबल के द्वारा स्वयं सिंधु-संगम तक के प्रदेश विजय करना चाहता है! उसमें मालवों का नाश निश्चित है। अतएव, सेनापतित्व के लिए आप लोग चंद्रगुप्त का ही वरण करें तो क्षुद्रकों का सहयोग भी आप लोगों को मिलेगा। चंद्रगुप्त को ही उन लोगों ने भी सेनापति बनाया है।

नागदत्त : ऐसा नहीं हो सकता—

चाणक्य : प्रबल प्रतिरोध करने के लिए दोनों सैन्यों में एकाधिपत्य का होना आवश्यक है। साथ ही क्षुद्रकों की संधि की मर्यादा भी रखनी चाहिये। प्रश्न—शासन का नहीं—युद्ध का है। युद्ध में सम्मिलित होने वाले वीरों का एकनिष्ठ होना लाभदायक है। फिर तो मालव और क्षुद्रक दोनों ही स्वतंत्र संघ हैं और रहेंगे। संभवतः इसमें प्राच्यों का एक गणराष्ट्र आगामी दिनों में और भी आ मिलेगा।

नागदत्त : समझ गया, चंद्रगुप्त को ही सम्मिलित सेना का सेनापति बनाना श्रेयस्कर होगा!

सिंहरण : अन्न-पान और भैषज्य-सेवा करने वाली स्त्रियों ने मालविका को अपना प्रधान बनाने की प्रार्थना की है।

गणमुख्य : यह उन लोगों की इच्छा पर है। अस्तु, महाबलाधिकृत पद के

लिए चंद्रगुप्त का वरण करने की आज्ञा परिषद् देती है।
(समवेत जयघोष)

७

(पर्वतेश्वर का प्रासाद)

अलका : सिंहरण मेरी आशा देख रहा होगा और मैं यहाँ पड़ी हूँ। आज इसका कुछ निबटारा करना होगा—अब अधिक नहीं। (आकाश की ओर देखकर) तारों से भरी हुई काली रजनी का नीला आकाश—जैसे कोई विराट् गणितज्ञ निभृत में रेखा-गणित की समस्या सिद्ध करने के लिए बिंदु दे रहा है। (पर्वतेश्वर का प्रवेश)

पर्वतेश्वर : अलका बड़ी द्विविधा है।

अलका : क्यों पौरव ?

पर्वतेश्वर : मैं तुमसे प्रतिश्रुत हो चुका हूं कि मालव-युद्ध में मैं भाग न लूंगा, परंतु सिकंदर का दूत आया है कि आठ सहस्र अश्वारोही लेकर रावी तट पर मिलो। साथ ही पता चला है कि कुछ यवन-सेना अपने देश को लौट रही है।

अलका : (अन्यमनस्क होकर) हाँ, कहते चलो !

पर्वतेश्वर : तुम क्या कहती हो अलका !

अलका : मैं सुनना चाहती हूँ।

पर्वतेश्वर : बतलाओ, मैं क्या करूँ ?

अलका : जो अच्छा समझो ! मुझे देखने दो ऐसी सुंदर वेणी—फूलों से गुंथी हुई श्यामा रजनी की सुंदर वेणी—अहा !

पर्वतेश्वर : क्या कह रही हो ?

अलका : गाने की इच्छा होती है, सुनोगे—(गाती है)

बिखरी किरन अलक व्याकुल हो विरस वदन पर चिंता लेख,
छायापथ में राह देखती गिनती प्रणय-अवधि की रेख।
प्रियतम के आगमन-पंथ में उड़ न रही है कोमल धूल,
कादंबिनी उठी यह ढँकने वाली दूर जलधि के कूल।

समय-विहग के कृष्णपक्ष में रजत चित्र-सी अंकित कौन—
तुम हो सुंदरि तरल तारिके ! बोलो कुछ, बैठो मत मौन !
मंदाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आँखें क्यों नादान !
रूप-निशा की ऊषा में फिर कौन सुनेगा तेरा गान !

पर्वतेश्वर : अलका मैं पागल होता जा रहा हूँ। यह तुमने क्या कर दिया है !

अलका : मैं तो गा रही हूँ।

पर्वतेश्वर : परिहास न करो—बताओ, मैं क्या करूँ ?

अलका : यदि सिकंदर के रण-निमंत्रण में तुम न जाओगे तो तुम्हारा राज्य चला जायगा।

पर्वतेश्वर : बड़ी विडंबना है !

अलका : पराधीनता से बढ़कर विडंबना और क्या है ? अब समझ गये होगे कि वह संधि नहीं, पराधीनता की स्वीकृति थी।

पर्वतेश्वर : मैं समझता हूँ कि एक हजार अश्वारोहियों को साथ लेकर वहाँ पहुँच जाऊँ, फिर कोई बहाना ढूंढ़ निकालूंगा।

अलका : (मन में) मैं चलूं, निकल भागने का ऐसा अवसर दूसरा न मिलेगा ! (प्रकट) अच्छी बात है, परंतु मैं भी साथ चलूंगी। यहाँ अकेले क्या करूंगी ? (पर्वतेश्वर का प्रस्थान)



(रावी के तट पर सैनिकों के साथ मालविका और चंद्रगुप्त/ नदी में दूर पर कुछ नावें)

मालविका : मुझे शीघ्र उत्तर दीजिये।

चंद्रगुप्त : जैसा उचित समझो, तुम्हारी आवश्यक सामग्री तुम्हारे अधीन रहेगी—सिंहरण को कहाँ छोड़ा।

मालविका : आते ही होंगे।

चंद्रगुप्त : (सैनिकों से) तुम लोग कितनी दूर तक गये थे ?

सैनिक : अभी चार योजन तक यवनों का पता नहीं। परंतु कुछ भारतीय सैनिक रावी के उस पार दिखाई दिए। मालव की पचासों हिस्त्रिकाएं वहाँ निरीक्षण कर रही हैं। उन पर धनुर्धर हैं।

सिंहरण : (प्रवेश करके) वह पर्वतेश्वर की सेना होगी। किंतु मागध ! आश्चर्य है।

चंद्रगुप्त : आश्चर्य कुछ नहीं।

सिंहरण : क्षुद्रकों के केवल कुछ ही गुल्म आये हैं, और तो····

चंद्रगुप्त : चिंता नहीं। कल्याणी के मागध सैनिक और क्षुद्रक अपनी घात में हैं यवनों को इधर आ जाने दो। सिंहरण, थोड़ी-सी हिंस्त्रिकाओं पर मुझे साहसी वीर चाहिये।

सिंहरण : प्रस्तुत हैं आज्ञा दीजिये।

चंद्रगुप्त : यवनों की जलसेना पर आक्रमण करना होगा। विजय के विचार से नहीं, केवल उलझाने के लिए और उनकी सामग्री को नष्ट करने के लिए। (सिंहरण संकेत करता है / नावें आती हैं)

मालविका : तो मैं स्कंधावार के पृष्ठ भाग में अपने साधन रखती हूँ। एक क्षुद्र भांडार मेरे उपवन में भी रहेगा।

चंद्रगुप्त : (विचार करके) अच्छी बात है।

(एक नाव तेजी से आती है / उस पर से अलका उतरती है)

सिंहरण : (आश्चर्यसे) तुम अलका !

अलका : पर्वतेश्वर ने प्रतिज्ञा भंग की है। वह सैनिकों के साथ सिकंदर की सहायता के लिए आया है। मालवों की नावें घूम रहीं थीं, मैं जान-बूझकर पर्वतेश्वर को छोड़कर वहीं पहुँच गयी—(हँसकर) परंतु मैं बंदी होकर आयी हूँ।

चंद्रगुप्त : देवि ! युद्धकाल है, नियमों को देखना ही पड़ेगा। मालविका ! ले जाओ इन्हें उपवन में। (मालविका और अलका का प्रस्थान / मालव-रक्षकों के साथ एक यवन का प्रवेश)

यवन : मालव के संधि-विग्रहिक अमात्य से मिलना चाहता हूँ।

सिंहरण : तुम दूत हो ?

यवन : हाँ !

सिंहरण : कहो मैं यही हूँ।

यवन : देवपुत्र ने आज्ञा दी है कि मालव-नेता आकर मुझसे भेंट करें और

मेरी जल-यात्रा की सुविधा का प्रबंध करें।

सिंहरण : सिकंदर से मालवों की ऐसी कोई संधि नहीं हुई जिससे वे इस कार्य के लिए बाध्य हों। हाँ, भेंट करने के लिए मालव सदैव प्रस्तुत है—चाहे संधि-परिषद् में या रणभूमि में!

यवन : तो यही जाकर कह दूँ ?

सिंहरण : हाँ जाओ (रक्षकों से) इन्हें सीमा तक पहुँचा दो।

(रक्षकों के साथ यवन का प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : मालव, हम लोगों ने भयानक दायित्व उठाया है, इसका निर्वाह करना होगा!

सिंहरण : जीवन-मरण से खेलते हुए करेंगे वीरवर!

चंद्रगुप्त : परंतु सुनो तो, यवन लोग आर्य्यों की रण-नीति से नहीं लड़ते। वे हमीं लोगों के युद्ध हैं, जिनमें रणभूमि के पास ही स्वच्छंदता से कृषक हल चलाता है। यवन आतंक फैलाना जानते हैं और उसे—अपनी रण-नीति का प्रधान अंग मानते हैं। निरीह साधारण प्रजा को लूटना, गाँवों को जलाना, उनके भीषण परंतु साधारण कार्य हैं।

सिंहरण : युद्ध-सीमा के पार के लोगों को भिन्न-भिन्न दुर्गों में एकत्र होने की आज्ञा प्रचारित हो गयी है। जो होगा—देखा जायगा।

चंद्रगुप्त : पर एक बात सदैव ध्यान में रखनी होगी।

सिंहरण : क्या ?

चंद्रगुप्त : यही, कि हमें आक्रमणकारी यवनों को यहाँ से हटाना है, और उन्हें जिस प्रकार हो, भारतीय सीमा के बाहर करना है। इसलिए—शत्रु की ही नीति से युद्ध करना होगा।

सिंहरण : सेनापति की सब आज्ञायें मानी जायेंगी, चलिये! (सब का प्रस्थान)

९

(शिविर के समीप कल्याणी और चाणक्य)

कल्याणी : आर्य्य, अब मुझे लौटने की आज्ञा दीजिये, क्योंकि सिकंदर ने विपाशा को अपने आक्रमण की सीमा बना ली है। अग्रसर होने की संभा-

वना नहीं, और अमात्य राक्षस भी आ गये हैं, उनके साथ मेरा जाना ही उचित है ।

चाणक्य : और चंद्रगुप्त से क्या कह दिया जाय ?

कल्याणी : मैं नहीं जानती ।

चाणक्य : परंतु राजकुमारी, उसका असीम प्रेमपूर्ण हृदय भग्न हो जायगा। वह बिना पतवार की नौका के सदृश इधर-उधर बहेगा ।

कल्याणी : आर्य्य, मैं इन बातों को नहीं सुनना चाहती, क्योंकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है । (अमात्य राक्षस का प्रवेश)

राक्षस : कौन ? चाणक्य ?

चाणक्य : हाँ अमात्य ! राजकुमारी मगध लौटना चाहती हैं ।

राक्षस : तो उन्हें कौन रोक सकता है ?

चाणक्य : क्यों ? तुम रोकोगे ।

राक्षस : क्या तुमने सबको मूर्ख समझ लिया है ?

चाणक्य : जो होंगे वे अवश्य समझे जायेंगे । अमात्य—मगध की रक्षा अभीष्ट नहीं है क्या ?

राक्षस : मगध विपन्न कहाँ है !

चाणक्य : तो मैं क्षुद्रकों से कह दूँ कि तुम लोग बाधा न दो, और यवनों से भी कह दिया जाय कि वास्तव में यह स्कंधावार प्राच्य देश के सम्राट् का नहीं है, जिससे भयभीत होकर तुम विपाशा पार नहीं होना चाहते, यह तो क्षुद्रकों की क्षुद्र सेना है, जो तुम्हारे लिए मगध तक पहुँचने का सरल पथ छोड़ देने का प्रस्तुत है—क्यों ?

राक्षस : (विचार कर) आह ब्राह्मण, मैं रहूँगा, यह तो मान लेने योग्य सम्मति है । परंतु—

चाणक्य फिर परंतु लगाया । तुम स्वयं रहो और राजकुमारी भी रहें और तुम्हारे साथ जो नवीन गुल्म आये हैं उन्हें भी रखना पड़ेगा । जब सिकंदर रावी के अंतिम छोर पर पहुँचेगा, तव तुम्हारी सेना का काम पड़ेगा । राक्षस ! फिर भी मगध पर मेरा स्नेह है । मैं उसे उजड़ने और हत्यारों से बचाना चाहता हूँ । (प्रस्थान)

कल्याणी : क्या इच्छा है अमात्य ?

राक्षस : मैं इसका मुँह भी नहीं देखना चाहता। पर इसकी बातें मानने के लिए विवश हो रहा हूँ। राजकुमारी ! यह मगध का विद्रोही अब तक बंदी कर लिया जाता, यदि इसकी स्वतंत्रता आवश्यक न होती।

कल्याणी : जैसी सम्मति हो।

चाणक्य : (प्रवेश करके) अमात्य ! सिंह पिंजड़े में बंद हो गया है।

राक्षस : कैसे ?

चाणक्य : जल यात्रा में इतना विघ्न उपस्थित हुआ कि सिकंदर को स्थलमार्ग से मालवों पर आक्रमण करना पड़ा। अपनी विजयों पर फूल कर उसने ऐसा किया, परंतु जा फँसा उनके चंगुल में। अब इधर क्षुद्रकों और मागधों की नवीन सेनाओं से उसको बाधा पहुँचानी होगी।

राक्षस : तब तुम क्या कहते हो—क्या चाहते हो ?

चाणक्य : यही, कि तुम अपनी संपूर्ण सेना लेकर विपाशा के तट की रक्षा करो, और क्षुद्रकों को लेकर मैं पीछे से आक्रमण करने जाता हूँ। इसमें तो डरने की बात—कोई नहीं ?

राक्षस : मैं स्वीकार करता हूँ।

चाणक्य : यदि न करोगे तो अपना अनिष्ट करोगे (प्रस्थान)

कल्याणी : विचित्र ब्राह्मण है अमात्य ! मुझे तो इसको देखकर डर लगता है।

राक्षस : विकट है—राजकुमारी एक बार इससे मेरा द्वंद्व होना अनिवार्य है, परतु अभी मैं उसे बचाना चाहता हूँ।

कल्याणी : चलिये ! (कल्याणी का प्रस्थान)

चाणक्य : (पुनः प्रवेश करके)—राक्षस एक बात तुम्हारे कल्याण की है, सुनोगे ! मैं कहना भूल गया था।

राक्षस : क्या !

चाणक्य : नंद को अपनी प्रेमिका सुवासिनी से तुम्हारे अनुचित संबंध का विश्वास हो गया है। अभी तुम्हारा मगध लौटना ठीक न होगा, समझे ! (चाणक्य का सवेग प्रस्थान—राक्षस सिर पकड़ कर बैठ जाता है)

१०

(मालव दुर्ग का भीतरी भाग/एक शून्य परकोटा)

मालविका : अलका—इधर तो कोई भी सैनिक नहीं हैं! यदि शत्रु इधर से आवे तब ?

अलका : दुर्ग ध्वंस करने के लिए यंत्र लगाये जा चुके है, परंतु मालव-सेना भी सुख की नींद नहीं सो रही है। सिंहरण को दुर्ग की भीतरी रक्षा का भार देकर चंद्रगुप्त नदी-तट से यवनसेना के पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेंगे। आज ही युद्ध का अंतिम निर्णय है। जिस स्थान पर यवन-सेना को ले आना अभीष्ट था, वहाँ तक पहुँच गई।

मालविका : अच्छा, चलो, कुछ नवीन आहत आ गये हैं, उनकी सेवा का प्रबंध करना है।

अलका : (देखकर) मालविका! मेरे पास धनुष है और कटार है। इस आपत्ति-काल में एक आयुध अपने पास रखना चाहिये। तू कटार अपने पास रख ले।

मालविका : मैं डरती हूँ, घृणा करती हूँ। रक्त की प्यासी छुरी अलग करो-अलका—मैंने सेवा का व्रत लिया है।

अलका : प्राणों के भय से—शस्त्र से घृणा करती हो क्या ?

मालविका : प्राण तो धरोहर है, जिसका होगा वही लेगा, मुझे भयों से इनकी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं, मैं जाती हूँ।

अलका : अच्छी बात है, जा! परंतु सिंहरण को शीघ्र ही भेज दे! यहाँ जब तक कोई न आ जाय, मैं नहीं हट सकती।
(मालविका का प्रस्थान)

अलका : संध्या का नीरव निर्जन प्रदेश है। बैठूँ—(अकस्मात बाहर से हल्ला होता है/युद्ध-शब्द) क्या चंद्रगुप्त ने आक्रमण कर दिया! परंतु यह स्थान....बड़ा ही अरक्षित है! (उठती है) अरे! वह कौन—यवन सैनिक है क्या ? तो सावधान हो जाऊँ। (धनुष चढ़ाकर तीर

मारती है/यवन-सैनिक का पतन दूसरा फिर ऊपर आता है उसे भी मारती है/तीसरी बार स्वयं सिकंदर ऊपर आता है—तीर का वार बचा कर दुर्ग में कूदता है और अलका को पकड़ना चाहता है/सहसा सिंहरण का प्रवेश और युद्ध)

सिंहरण : (तलवार चलाते हुए) तुमको स्वयं इतना साहस नहीं करना चाहिये सिकंदर ! तुम्हारा प्राण बहुमूल्य है !

सिकंदर : सिकंदर केवल सेनाओं को आज्ञा देना नहीं जानता । बचाओ अपने को—(भाले का वार करता है सिंहरण ऐसी फुरती से भाले को ढाल पर लेता है कि वह सिकंदर के हाथ से छूट जाता है / यवनराज विवश होकर तलवार चलाता है किंतु सिंहरण के भयानक प्रत्याघात से घायल होकर गिरता है / तीन यवन-सैनिक कूदकर आते हैं, इधर से मालव-सैनिक पहुँचते हैं)

सिंहरण : यवन ! दुस्साहस न करो ! तुम्हारे सम्राट् की अवस्था शोचनीय है ले जाओ, इनकी शुश्रूषा करो !

यवन : दुर्ग-द्वार टूटता है और अभी हमारे वीर सैनिक इस दुर्ग को मटियामेट करते हैं !

सिंहरण : पीछे चंद्रगुप्त की सेना है मूर्ख इस दुर्ग में आकर तुम सब बंदी होगे । ले जाओ सिकंदर को—उठा ले जाओ, जब तक और मालवों को यह न विदित हो जाय कि यही वह सिकंदर है ।

मालव सैनिक : सेनापति ! रक्त का बदला ! इस नृशंस ने निरीह जनता का अकारण वध किया है । प्रतिशोध !

सिंहरण : ठहरो, मालव वीरो ! ठहरो । यह भी एक प्रतिशोध है ! यह भारत के ऊपर एक ऋण था ! पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है । यवन जाओ—शीघ्र जाओ ! (तीनों यवन सिकंदर को लेकर जाते हैं/घबराया हुआ एक सैनिक आता है)

सिंहरण : क्या है ?

सैनिक : दुर्ग द्वार टूट गया, यवन-सेना भीतर आ रही है।

सिंहरण : कुछ चिंता नहीं। दृढ़ रहो। समस्त मालव-सेना से कह दो— सिंहरण तुम्हारे साथ मरेगा। (अलका से) तुम मालविका को साथ लेकर अंतःपुर की स्त्रियों को भूगर्भ-द्वार से सुरक्षित स्थान पर ले जाओ—अलका! मालव के ध्वंस पर ही आर्य्यों का यशो-मंदिर ऊँचा खड़ा हो सकेगा—जाओ!

(अलका का प्रस्थान/यवन-सैनिकों का प्रवेश/दूसरी ओर से चंद्रगुप्त का प्रवेश और युद्ध/एक यवन सैनिक दौड़ा हुआ आता है)

यवन : सेनापति सिल्यूकस! क्षुद्रकों की सेना भी पीछे से आ गयी है! बाहर की सेना को उन लोगों ने उलझा रक्खा है।

चंद्रगुप्त : यवन सेनापति मार्ग चाहते हो या युद्ध? मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है। तुम्हारा जीवन!

सिल्यूकस : (कुछ सोचने लगता है) हम दोनों के लिए प्रस्तुत हैं! किंतु....

चंद्रगुप्त : शांति—मार्ग दो! जाओ सेनापति—सिकंदर का जीवन बच जाय तो फिर आक्रमण करना।

(यवन-सेना का प्रस्थान/चंद्रगुप्त का जय-घोष)

पटाक्षेप

तृतीय अंक

१

(विपाशा तट के शिविर में राक्षस टहलते हुए)

राक्षस : एक दिन चाणक्य ने कहा था कि आक्रमणकारी यवन, ब्राह्मण और बौद्ध का भेद न मानेंगे। वही बात ठीक उतरी। यदि मालव और क्षुद्रक परास्त हो जाते और यवन-सेना शतद्रु पार कर जाती तो मगध का नाश निश्चित था। मूर्ख मगध-नरेश ने संदेह किया है और बार-बार मेरे लौट की आज्ञाएँ आने लगी हैं। परंतु....

(एक चर प्रवेश करके प्रणाम करता है)

राक्षस : क्या समाचार है ?

चर : बड़ा ही आतंकजनक है—अमात्य !

राक्षस : कुछ कहो भी !

चर : सुवासिनी पर आपसे मिल कर कुचक्र रचने का अभियोग है वह कारागार में है।

राक्षस : (क्रोध से) और भी कुछ ?

चर : हाँ अमात्य, प्रांत-दुर्ग पर अधिकार करके विद्रोह करने के अपराध में आपको बंदी बनाकर ले आने वाले के लिए पुरस्कार की घोषणा की गयी है।

राक्षस : यहाँ तक ! तुम सत्य कहते हो ?

चर : मैं तो यहाँ तक कहने के लिये प्रस्तुत हूँ कि अपने बचने का शीघ्र उपाय कीजिये।

राक्षस : भूल थी—मेरी भूल थी ! राक्षस—मगध की रक्षा करने चला था ! जाता मगध—कटती प्रजा—लुटते नगर। नंद ! क्रूरता और मूर्खता की प्रतिमूर्त्ति नंद—एक पशु ! उसके लिए क्या चिंता थी ! सुवासिनी—मैं सुवासिनी के लिए मगध को बचाना चाहता था। कुटिल विश्वासघातिनी राज-सेवा ! तुझे धिक्कार है !

(एक नायक का सैनिकों के साथ प्रवेश)

नायक : अमात्य राक्षस, मगध-सम्राट् की आज्ञा से शस्त्र त्याग कीजिये- आप बंदी हैं।

राक्षस : (खड्ग खींचकर) कौन है तू, मूर्ख इतना साहस !

नायक : यह तो बंदीगृह बतावेगा। बल-प्रयोग करने के लिये मैं बाध्य हूं। (सैनिकों से) अच्छा ! बाँध लो—

(दूसरी ओर से आठ सैनिक आकर उन पहले के सैनिकों को बंदी बनाते हैं/राक्षस आश्चर्य चकित होकर देखता है)

नायक : तुम सब कौन हो ?

नवागत सै० : राक्षस के शरीर-रक्षक !

राक्षस : मेरे !

नवागत सै० : हाँ अमात्य ! आर्य्य चाणक्य ने आज्ञा दी है कि जब तक यवनों का उपद्रव है, तब तक सबकी रक्षा होनी चाहिये, भले ही वह राक्षस क्यों न हो।

राक्षस : इसके लिए मैं चाणक्य का कृतज्ञ हूँ।

नवागत सै० : परंतु अमात्य ! कृतज्ञता प्रकट करने के लिए आपको उनके समीप तक चलना होगा।

(सैनिकों को संकेत करता है वे बंदियों को लेकर जाते हैं)

राक्षस : मुझे कहाँ चलना होगा ? राजकुमारी से शिविर में भेंट कर लूँ।

नवागत सै० : वहीं सबसे भेंट होगी। यह पत्र है। (राक्षस पत्र लेकर पढ़ता है)

राक्षस : अलका का सिंहरण से ब्याह होने वाला है, उसमें मैं भी निमंत्रित किया गया हूँ ! चाणक्य—विलक्षण बुद्धि का ब्राह्मण है, उसकी प्रखर प्रतिभा कूट राजतीति के साथ रात-दिन जैसे खिलवाड़ किया करती है।

नवागत सै० : हाँ, आपने और भी कुछ सुना है ?

राक्षस : क्या ?

नवागत सै० : यवनों ने मालवों से संधि करने का संदेश भेजा है। सिकंदर ने उस वीर रमणी अलका को देखने की बड़ी इच्छा प्रकट की है, जिसने दुर्ग में सिकंदर का प्रतिरोध किया था।

राक्षस : आश्चर्य !

चर : हाँ अमात्य ! यह तो मैं कहने ही नहीं पाया था—रावी-त टपर

एक विस्तृत शिविरों की रंग-भूमि बनी है जिसमें अलका का ब्याह होगा। जबसे सिकंदर को यह विदित हुआ है कि अलका तक्षशिला नरेश आंभीक की बहन है, तबसे उसे एक अच्छा अवसर मिल गया है। उसने उक्त शुभ अवसर पर मालवों और यवनों का एक सम्मिलित उत्सव करने की घोषणा कर दी है। आंभीक के पक्ष से निमंत्रित होकर—परिणय-संपादन कराने दल-बल के साथ स्वयं सिकंदर भी आवेगा।

राक्षस : चाणक्य—तू धन्य है! मुझे ईर्ष्या होती है, चलो! (सब जाते हैं)

२

(रावी-तट के उत्सव-शिविर का एक पथ/पर्वतेश्वर अकेले टहलते हुए)

पर्वतेश्वर : आह! कैसा अपमान! जिस पर्वतेश्वर ने उत्तरापथ में अनेक प्रबल शत्रुओं के रहते भी विरोधों को कुचल कर गर्व से सिर ऊँचा कर रखा था, जिसने दुर्द्दांत सिकंदर के सामने मरण को तुच्छ समझते हुए, वक्ष ऊँचा करके भाग्य से हँसी-ठट्ठा किया था, उसी का यह तिरस्कार—सो भी एक स्त्री के द्वारा और सिकंदर के संकेत से—प्रतिशोध—रक्त-पिशाची प्रतिहिंसा अपने दाँतों से नसों को नोच रही है। मरूँ या मार डालूँ। मारना तो असंभव है सिंहरण और अलका वर-वधू के वेश में हैं, मालवों के चुने हुए वीरों से वे घिरे हैं। सिकंदर उनकी प्रशंसा और आदर में लगा है। इस समय सिंहरण पर हाथ उठाना असफलता के पैरों तले गिरना है। तो फिर जीकर क्या करूँगा? (छुरा निकाल कर आत्महत्या करना चाहता है/चाणक्य आकर हाथ पकड़ लेता है)

पर्वतेश्वर : कौन?

चाणक्य : ब्राह्मण चाणक्य।

पर्वतेश्वर : मेरे इस अंतिम समय में भी क्या कुछ दान चाहते हो?

चाणक्य : हाँ।

पर्वतेश्वर : मैंने अपना राज्य दिया—अब हटो।

चाणक्य : यह तो तुमने दे दिया, परंतु मैंने तुमसे माँगा न था, पौरव !

पर्वतेश्वर : फिर क्या चाहते हो ?

चाणक्य : एक प्रश्न का उत्तर ।

पर्वतेश्वर : तुम अपनी बात मुझे स्मरण कराने आये हो ? तो ठीक है । ब्राह्मण ! तुम्हारी बात सच हुई । यवनों ने आर्य्यावर्त्त को पददलित कर लिया । मैं गर्व में भूला था, तुम्हारी बात न मानी । अब उसी का प्रायश्चित्त करने जाता हूँ—छोड़ दो !

चाणक्य : पौरव ! शांत हो । मैं एक दूसरी बात पूछता हूँ वृषल चंद्रगुप्त क्षत्रिय है कि नहीं, अथवा उसे मूर्द्धाभिषिक्त करने में ब्राह्मण से भूल हुई ?

पर्वतेश्वर : आह—ब्राह्मण ! व्यंग न करो । चंद्रगुप्त के क्षत्रिय होने का प्रमाण यही विराट् आयोजन है । आर्य्य चाणक्य ! मैं क्षमता रखते हुए जिस काम को न कर सका, वह कार्य निस्सहाय चंद्रगुप्त ने किया । आर्य्यावर्त्त से यवनों के निकल जाने का संकेत उसके प्रचुर बल का द्योतक है । मैं विश्वस्त हृदय से कहता हूँ कि चंद्रगुप्त आर्य्यावर्त्त का एकच्छत्र सम्राट् होने के उपयुक्त है । अब मुझे छोड़ दो ···

चाणक्य : पौरव ! ब्राह्मण राज्य करना नहीं जानता, करना भी नहीं चाहता, हाँ, वह राजाओं का नियमन करना जानता है, राजा बनाना जानता है । इसलिये तुम्हें अभी राज्य करना होगा, और करना होगा वह कार्य जिसमें भारतीयों का गौरव हो और क्षात्र धर्म का पालन हो ।

पर्वतेश्वर : (छुरा फेंककर) वह क्या काम है ?

चाणक्य : जिन यवनों ने तुमको लज्जित और अपमानित किया है, उनसे प्रतिशोध !

पर्वतेश्वर : असंभव है !

चाणक्य : (हँसकर) मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली भाँति परिचित रहता है । परंतु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिये । असंभव कहकर —किसी काम को करने से पहले—कर्मक्षेत्र में काँपकर लड़खड़ाओ मत पौरव ! तुम क्या हो—विचार कर देखो तो ! सिकंदर ने जो

क्षत्रप नियुक्त किया है—जिन संधियों को वह प्रगतिशील रखना चाहता है वे सब क्या हैं ? अपनी लूट-पाट को वह साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है ! चाणक्य जीते-जी यह नहीं होने देगा ! तुम राज्य करो ।

पर्वतेश्वर : परंतु आर्य्य, मैंने राज्य दान कर दिया है ।

चाणक्य : पौरव ! तामस त्याग से सात्त्विक ग्रहण उत्तम है ! वह दान न था, उसमें कोई सत्य नहीं । तुम उसे ग्रहण करो ।

पर्वतेश्वर : तो क्या आज्ञा है ?

चाणक्य : पीछे बतलाऊँगा । इस समय मुझे केवल यही कहना है कि सिंहरण को अपना भाई समझो और अलका को बहन ।

(वृद्ध गांधार-राज का सहसा प्रवेश)

वृद्ध : अलका ? कहाँ है, अलका !

पर्वतेश्वर : कौन हो तुम वृद्ध ?

चाणक्य : मैं इन्हें जानता हूँ—वृद्ध गांधार-नरेश !

पर्वतेश्वर : आर्य्य, मैं पर्वतेश्वर प्रणाम करता हूँ ।

वृद्ध : मैं प्रणाम करने योग्य नहीं—पौरव ! मेरी संतान से देश का बड़ा अनिष्ट हुआ है ! आंभीक ने लज्जा की यवनिका में मुझे छिपा दिया है । इस देशद्रोही के प्राण केवल अलका को देखने के लिए बचे हैं, उसी से कुछ आशा थी ! जिसको मोल लेने में लोभ असमर्थ था—उसी अलका को देखना चाहता हूँ और प्राण दे देना चाहता हूँ ! (हाँफता है)

चाणक्य : क्षत्रिय ! तुम्हारे पाप और पुण्य दोनों जीवित हैं स्वस्तिमती अलका आज सौभाग्यवती होने जा रही है, चलो कन्या-संप्रदान करके प्रसन्न हो जाओ !

(चाणक्य वृद्ध गांधार-नरेश को लिवा जाता है)

पर्वतेश्वर : जाऊँ—किधर जाऊँ—चाणक्य के पीछे ? (जाता है)

(कार्नेलिया और चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चंद्रगुप्त : कुमारी, आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई !

कार्नेलिया : किस बात की।

चंद्रगुप्त : कि मैं विस्मृत नहीं हुआ।

कार्नेलिया : स्मृति कोई अच्छी वस्तु है क्या !

चंद्रगुप्त : स्मृति जीवन का पुरस्कार है सुंदरि !

कार्नेलिया : परंतु मैं कितने दूर देश की हूँ। स्मृतियाँ ऐसे अवसर पर उद्दंड हो जाती हैं। अतीत की कारा में बंदिनी-स्मृतियाँ अपने करुण निःश्वास की शृंखलाओं को झनझनाकर सूचिभेद्य अंधकार में सो जाती हैं।

चंद्रगुप्त : ऐसा हो तो भूल जाओ शुभे ! इस केंद्रच्युत जलते हुए उल्कापिंड की कोई कक्षा नहीं। निर्वासित—अपमानित प्राणों की चिंता क्या ?

कार्नेलिया : नहीं चंद्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल-कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुई शैल-श्रेणी, हरी भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप, और भोले कृषक तथा सरला कृषक-बालिकायें, बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश—यह त्याग ओर ज्ञान का पालना—यह प्रेम की रंगभूमि—भारतभूमि क्या भुलायी जा सकती है ? कदापि नहीं—अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।

चंद्रगुप्त : शुभे, यह सुनकर मैं चकित हो गया हूँ।

कार्नेलिया : और मैं मर्माहत हो गयी हूँ चंद्रगुप्त मुझे पूर्ण विश्वास था कि यहाँ के क्षत्रप पिताजी नियुक्त होंगे और मैं अलेग्जेंद्रिया में—समीप ही रहकर भारत को देख सकूँगी। परंतु वैसा न हुआ सम्राट् ने फिलिप्स को यहाँ का शासक नियुक्त कर बिया है।

(अकस्मात् फिलिप्स का प्रवेश)

फिलिप्स : तो बुरा क्या है कुमारी। सिल्यूकस के क्षत्रप न होने पर भी कार्नेलिया यहाँ की शासिका हो सकती हैं। फिलिप्स अनुचर होगा (चंद्रगुप्त को देखकर) फिर वही भारतीय युवक !

चंद्रगुप्त : सावधान—यवन ? हम, लोग एक बार एक-दूसरे की परीक्षा ले चुके हैं ।

फिलिप्स : उँह ! तुमसे मेरा संबंध ही क्या है, परंतु····

कार्नेलिया : और मुझसे भी नहीं, फिलिप्स ! मैं चाहती हूँ कि तुम मुझसे न बोलो ।

फिलिप्स : अच्छी बात है । किंतु मैं चंद्रगुप्त को भी तुमसे बातें करते हुए नहीं देख सकता । तुम्हारे प्रेम का····

कार्नेलिया : चुप रहो, मैं कहती हूँ, चुप रहो ।

फिलिप्स : (चंद्रगुप्त से) मैं तुमसे द्वंद्व-युद्ध किया चाहता हूँ ।

चंद्रगुप्त : जब इच्छा हो, मैं प्रस्तुत हूँ । और संधि भंग करने के लिए तुम्हीं अग्रसर होगे, यह अच्छी बात होगी ।

फिलिप्स : संधि राष्ट्र की है । यह मेरी व्यक्तिगत बात है । अच्छा, फिर कभी मैं तुम्हारा आह्वान करूँगा ।

चंद्रगुप्त : आधी रात, पिछले पहर, जब तुम्हारी इच्छा हो !
(फिलिप्स का प्रस्थान)

कार्नेलिया : सिकंदर ने भारत से युद्ध किया है और मैंने भारत का अध्ययन किया है । मैं देखती हूँ कि यह युद्ध ग्रीक और भारतीयों के अस्त्र का ही नहीं, इसमें दो बुद्धियाँ भी लड़ रही हैं । यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकंदर और चंद्रगुप्त तो उनके अस्त्र हैं ।

चंद्रगुप्त : मैं क्या कहूँ, एक निर्वासित—

कार्नेलिया : लोग चाहे जो कहें, मैं भली-भाँति जानती हूँ कि अभी तक चाणक्य की विजय है । पिताजी से मेरा इस विषय पर अच्छा विवाद होता है—वे अरस्तू के शिष्यों में हैं ।

चंद्रगुप्त : भविष्य के गर्भ में अभी बहुत-से रहस्य छिपे हैं ।

कार्नेलिया : अच्छा तो मैं जाती हूं और फिर एक बार अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ । किंतु मुझे विश्वास है कि मैं पुनः लौट कर आऊँगी ?

चंद्रगुप्त : उस समय भी मुझे भूलने की चेष्टा करोगी ?

कार्नेलिया : नहीं चंद्रगुप्त ! बिदा—यवन-बेड़ा आज ही जायगा । (दोनों एक-दूसरे की ओर देखते हुए जाते हैं / राक्षस और कल्याणी का प्रवेश)

कल्याणी : ऐसा विराट् दृश्य तो मैंने नहीं देखा था अमात्य ! मगध को किस बात का गर्व है ?

राक्षस : गर्व है राजकुमारी ! और उसका गर्व सत्य है। चाणक्य और चंद्रगुप्त मगध की ही प्रजा हैं, जिन्होंने इतना बड़ा उलट-फेर किया है ?

चाणक्य : (प्रवेश करते) तो तुम इसे स्वीकार करते हो। अमात्य राक्षस ?

राक्षस : शत्रु की उचित प्रशंसा करना मनुष्य का धर्म है। तुमने अद्भुत कार्य किये, इसमें भी कोई संदेह है ?

चाणक्य : अस्तु, अब तुम जा सकते हो। मगध तुम्हारा स्वागत करेगा।

राक्षस : राजकुमारी कल चली जायेंगी। पर, मैंने अभी तक निश्चय नहीं किया है !

चाणक्य : मेरा कार्य हो गया, राजकुमारी जा सकती हैं, परंतु एक बात कहूं ?

राक्षस : क्या ?

चाणक्य : यहाँ की कोई बात नंद से न कहने की प्रतिज्ञा करनी होगी !

कल्याणी : मैं प्रतिश्रुत होती हूँ।

चाणक्य : राक्षस, मैं सुवासिनी से तुम्हारी भेंट भी करा देता, परंतु वह मुझ पर विश्वास नहीं करती।

राक्षस : क्या वह भी यहीं हैं ?

चाणक्य : कहीं होगी, तुम्हारा प्रत्यय देख कर वह आ सकती है।

राक्षस : यह लो मेरी अंगुलीय मुद्रा। चाणक्य ! सुवासिनी को कारागार से मुक्त कराके मुझसे भेंट करा दो।

चाणक्य : (मुद्रा लेकर) मैं चेष्टा करूँगा। (प्रस्थान)

राक्षस : तो राजकुमारी, प्रणाम !

कल्याणी : तुमने अपना कर्त्तव्य भली-भांति सोच लिया होगा। मैं जाती हूं, और विश्वास दिलाती हूं कि मुझसे तुम्हारा अनिष्ट न होगा। (दोनों का प्रस्थान)

३

(रावी के तट पर सिकंदर का बेड़ा प्रस्तुत है/चाणक्य और पर्वतेश्वर)

चाणक्य : पौरव देखो यह नृशंसता की बाढ़ आज उतर जायगी । चाणक्य ने जो किया, वह भला था या बुरा, अब समझ में आवेगा !

पर्वतेश्वर : मैं मानता हूँ, यह आप ही का स्तुत्य कार्य है !

चाणक्य : और चंद्रगुप्त के बाहु-बल का, पौरव ! आज फिर मैं उसी बात को दुहराना चाहता हूं । अत्याचारी नंद के हाथों से मगध का उद्धार करने के लिए चाणक्य ने तुम्हीं से पहले सहायता माँगी थी और अब तुम्हीं से लेगा भी—अब तो तुम्हें विश्वास होगा ?

पर्वतेश्वर : मैं प्रस्तुत हूँ, आर्य्य !

चाणक्य : मैं विश्वस्त हुआ । अच्छा, यवनों को आज विदा करना है ।

(एक ओर से सिकंदर, सिल्यूकस, कार्नेलिया, फिलिप्स इत्यादि का और दूसरी ओर से चंद्रगुप्त, सिंहरण, अलका, मालविका और आंभीक इत्यादि का यवन और भारतीय रणवाद्यों के साथ प्रवेश)

सिकंदर : सेनापति चंद्रगुप्त ! बधाई है !

चंद्रगुप्त : किस बात की राजन् !

सिकंदर : जिस समय तुम भारत के सम्राट् होगे, उस समय मैं उपस्थित न रह सकूंगा, उसके लिए पहले से बधाई है । मुझे उस नग्न ब्राह्मण दांड्यायन की बातों का पूर्ण विश्वास हो गया !

चंद्रगुप्त : आप वीर हैं ।

सिकंदर : आर्य्य वीर ! मैंने भारत में हरक्यूलिस, एचिलिस के आत्माओं को भी देखा है और देखा डिमास्थनीज को । संभवतः प्लेटो और अरस्तू भी होंगे मैं भारत का अभिनंदन करता हूँ ।

सिल्यूकस : सम्राट् ! यही आर्य्य चाणक्य हैं ।

सिकंदर : धन्य हैं, आप, मैं तलवार खींचे हुए भारत में आया, हृदय देकर जाता हूं । विस्मय-विमुग्ध हूँ । जिनसे खड्ग परीक्षा हुई थी, यु में जिनसे तलवारें मिली थीं, उनसे हाथ मिलाकर—मैत्री के हाथ मिलाकर जाना चाहता हूँ ।

चाणक्य : हम लोग प्रस्तुत है सिकंदर ! तुम वीर हो, भारतीय सदैव उत्तम गुणों की पूजा लरते हैं । तुम्हारी जल-यात्रा मंगलमय हो । हम लोग युद्ध करना जानते हैं—द्वेष नहीं । (सिकंदर हँसता हुआ अनुचरों के साथ नौका पर आरोहण करता है / नाव चलती है)

४

(पथ में चर और राक्षस)

चर : छल ! प्रवंचना !! विश्वास घात !!!

राक्षस : क्या है, कुछ सुनूँ भी !

चर : मगध से आज मेरा सखा कुरंग आया है, उससे यह मालूम हुआ है कि महाराज नंद का कुछ भी क्रोध आपके ऊपर नहीं, वह आपके शीघ्र मगध लौटने के लिए उत्सुक हैं ।

राक्षस : और सुवासिनी ?

चर : सुवासिनी सुखी और स्वतंत्र है । मुझे चाणक्य के चर से वह धोखा हुआ था, जब मैंने आपसे वहाँ का समाचार कहा था ।

राक्षस : तब क्या मै कुचक्र में डाला गया हूँ ? (विचार कर) चाणक्य की चाल है । ओह, मैं समझ गया । अभी निकल भागना चाहिए । सुवासिनी पर भी कोई अत्याचार—मेरी मुद्रा दिखाकर न किया जा सके, इसके लिए मुझे शीघ्र पहुँचना चाहिये ।

चर : क्या आपने मुद्रा भी दे दी है ।

राक्षस : मेरी मूर्खता ! चाणक्य, मगध में विद्रोह कराना चाहता है !

चर : अभी हम लोगों को मगध-गुल्म मार्ग में मिल जायगा, चाणक्य से बचने के लिए उसका आश्रय अच्छा होगा । दो तीव्रगामी अश्व मेरे अधिकार में हैं—शीघ्रता कीजिये ।

राक्षस : तो चलो ! मैं चाणक्य के हाथों की कठपुतली बनकर मगध का नाश नहीं करा सकता । (दोनों का प्रस्थान/अलका और सिंहरण का प्रवेश)

सिंहरण : देवि ! पर इसका उपाय क्या है ?

अलका : उपाय जो कुछ हो, मित्र के कार्य में तुमको सहायता करनी ही चाहिये। चंद्रगुप्त आज कह रहे थे कि 'मैं मगध जाऊँगा देखूँ पर्वतेश्वर क्या करते हैं'।

सिंहरण : चंद्रगुप्त के लिए ये प्राण अर्पित हैं अलके! मालव कृतघ्न नहीं होते, देखो चंद्रगुप्त और चाणक्य आ रहे हैं।

अलका : और उधर से पर्वतेश्वर भी!

(चंद्रगुप्त, चाणक्य और पर्वतेश्वर का प्रवेश)

सिंहरण : मित्र अभी कुछ दिन और ठहर जाते तो अच्छा था, अथवा जैसी गुरुदेव की आज्ञा!

चाणक्य : पर्वतेश्वर, तुमने मुझसे प्रतिज्ञा की है!

पर्वतेश्वर : मैं प्रस्तुत हूँ आर्य्य!

चाणक्य : अच्छा तो तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। सिंहरण मालव गणराष्ट्र का एक व्यक्ति है, वह शक्ति-भर प्रयत्न कर सकता है, किंतु सहायता बिना परिषद् की अनुमति लिए असंभव है। मैं परिषद् के सामने अपना भेद खोलना नहीं चाहता। इसलिए पौरव, सहायता केवल तुम्हें करनी होगी। मालव अपने शरीर और खड्ग का स्वामी है, वह मेरे लिए प्रस्तुत है। मगध का अधिकार प्राप्त होने पर जैसा तुम कहोगे....

पर्वतेश्वर : मैं कह चुका हूं आर्य्य चाणक्य! इस शरीर में, धन में, विभव में या अधिकार मे, मेरी स्पृहा नहीं रह गयी। मेरी सेना के महाबलाधिकृत सिंहरण और मेरा कोष आपका है।

चंद्रगुप्त : मैं आप लोगों का कृतज्ञ होकर मित्रता की लघु नहीं बनाना चाहता। चंद्रगुप्त सदा आप लोगों का वही सहचर है।

चाणक्य : परंतु मगध नहीं जाना होगा। अभी जो संदेश मगध से मिले हैं, वे बड़े भयानक हैं! सेनापति, तुम्हारे पिता कारागार में हैं! और भी....

चंद्रगुप्त : इतने पर भी आप मुझे मगध जाने से रोक रहे हैं?

चाणक्य : यह प्रश्न अभी मत करो।

(चंद्रगुप्त सिर झुका लेता है / एक पत्र लिए मालविका का प्रवेश)

मालविका : यह सेनापति के नाम पत्र है ।

चंद्रगुप्त : (पढ़कर) आर्य्य, मैं जा भी नहीं सकता ।

चाणक्य : क्यों?

चंद्रगुप्त : युद्ध का आह्वान है—द्वंद्व के लिए फिलिप्स का निमंत्रण है ।

चाणक्य : तुम डरते तो नहीं ?

चंद्रगुप्त : आर्य्य ! आप मेरा उपहास कर रहे हैं ।

चाणक्य : (हँसकर) तब ठीक है, पौरव ! तुम्हारा यहाँ रहना हानिकारक होगा । उत्तरापथ की दासता के अवशिष्ट चिह्न—फिलिप्स का नाश निश्चित है । चंद्रगुप्त उसके लिए उपयुक्त है । परंतु यवनों से तुम्हारा फिर संघर्ष मुझे ईप्सित नहीं है । यहाँ रहने से तुम्हीं पर संदेह होगा, इसलिए तुम मगध चलो । और सिंहरण ! तुम सन्नद्ध रहना यवन-विद्रोह तुम्हीं को शांत करना होगा । (सबका प्रस्थान)

९

(मगध की रंगशाला में नंद का प्रवेश)

नंद : सुवासिनी !

सुवासिनी : देव !

नंद : कहीं दो घड़ी चैन से बैठने की भी छुट्टी नहीं, तुम्हारी छाया में विश्राम करने आया हूँ !

सुवासिनी : प्रभु, क्या आज्ञा है ? अभिनय देखने की इच्छा है ?

नंद : नहीं सुवासिनी अभिनय तो नित्य देख रहा हूँ । छल, प्रतारणा, विद्रोह के अभिनय देखते-देखते आँखें जल रही हैं । सेनापति मौर्य्य, जिसके बल पर मैं भूला था, जिसके विश्वास पर मैं निश्चित सोता था, विद्रोही-पुत्र चंद्रगुप्त को सहायता पहुँचाता है ! उसी का न्याय करना था—न्याय हुआ कि अन्याय, हृदय संदिग्ध है । सुवासिनी—किस पर विश्वास करूँ ?

सुवासिन : अपने परिजनों पर देव !

नंद : अमात्य राक्षस भी नहीं, मैं तो घबरा गया हूँ ।

सुवासिनी : द्राक्षासव ले आऊँ ?

नंद : ले जाओ (सुवासिनी जाती है) सुवासिनी कितनी सरल है ! प्रम और यौवन के शीतल मेघ लहलही लता पर मंडरा रहे हैं परंतु—
(सुवासिनी का पान-पात्र लिए प्रवेश/पात्र भरकर देतीहै)
सुवासिनी ! गाओ—वही उन्मादक गान !
(सुवासिनी गाती है)

आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा !
मधु पीकर पागल हुआ, करता प्रेम-प्रलाप,
शिथिल हुआ जाता हृदय, जैसे अपने आप !
लाज के बंधन खोल रहा !
बिछल रही है चाँदनी — छवि-मतवाली रात,
कहती कंपित अधर से, बहकाने की बात !
कौन मधु-मदिरा घोल रहा ?

नंद : सुवासिनी ! जगत् में और भी कुछ है—ऐसा मुझे तो नहीं प्रतीत होता ! क्या उस कोकिल की पुकार केवल तुम्हीं सुनती हो ? ओह ? मै इस स्वर्ग से कितनी दूर था, सुवासिनी !
(कामुक की-सी चेष्टा करता है)

सुवासिनी : भ्रम है महाराज ! एक वेतन पाने वाली का यह अभिनय है ।

नंद : कभी नहीं, यह भ्रम है तो समस्त संसार मिथ्या है। तुम सच कहती हो, निर्बोध नंद ने कभी वह पुकार नही सुनी । सुंदरि ! तुम मेरी प्राणेश्वरी हो !

सुवासिनी : (सहसा चकित होकर) मैं दासी हूँ महाराज !

नंद : यह प्रलोभन देकर ऐसी छलना ! नंद नहीं भूल सकता सुवासिनी ! आओ—(हाथ पकड़ता है)

सुवासिनी : (भयभीत होकर) महाराज ! मैं अमात्य राक्षस की धरोहर हूँ, सम्राट् की भोग्या नहीं बन सकती !

नंद : अमात्य राक्षस इस पृथ्वी पर तुम्हारा प्रणयी होकर नहीं जी सकता ।

सुवासिनी : (सरोष) तो उसे खोजने के लिए स्वर्ग में जाऊगी ! (नंद उसे बलपूर्वक पकड़ लेता है / ठीक उसी समय राक्षस का प्रवेश)

नंद : (उसे देखते ही छोड़ता हुआ) तुम ! अमात्य राक्षस !

राक्षस : हाँ सम्राट् ! एक अबला पर अत्याचार न होने देने के लिये ठीक समय पर पहुँचा ।

नंद : यह तुम्हारी अनुरक्ता है, राक्षस ! मैं लज्जित हूँ ।

राक्षस : मैं प्रसन्न हुआ कि सम्राट् अपने को परखने की चेष्टा करते हैं । अच्छा, तो इस समय जाता हूँ । चलो सुवासिनी ! (दोनों जाते हैं)

६

(कुसुमपुर का प्रांत भाग/चाणक्य, मालविका और अलका)

मालविका : सुवासिनी और राक्षस स्वतंत्र हैं ! उनका परिणय शीघ्र ही होगा ! इधर मौर्य्य कारागार में, वररुचि अपदस्थ, नागरिक लोग नंद की उच्छृंखलताओं से असंतुष्ट हैं ।

चाणक्य : ठीक है, समय हो चला है ! मालविका तुम नर्त्तकी बन सकती हो ?

मालविका : हाँ, मैं नृत्य-कला जानती हूँ ।

चाणक्य : तो नंद की रंगशाला में जाओ और लो यह मुद्रा तथा पत्र, राक्षस का विवाह होने के पहले—ठीक एक घड़ी पहले—नंद के हाथ में देना ! और पूछने पर बतला देना कि अमात्य राक्षस ने सुवासिनी को देने के लिये कहा था । परंतु मुझसे भेंट न हो सकी, इसलिए यह उन्हें लौटा देने को लायी हूँ ।

मालविका : (स्वगत) क्या ? क्या असत्य बोलना होगा ! चंद्रगुप्त के लिए सब करूँगी । (प्रगट) अच्छा ।

चाणक्य : मैंने सिंहरण को लिख दिया था कि चंद्रगुप्त को शीघ्र यहाँ भेजो । तुम यवनों के सिर उठाने पर उन्हें शांत करके आना, तब तक अलका मेरी रक्षा कर लेगी । मैं चाहता हूँ कि सब सेना वणिकों के रूप में धीरे-धीरे कुसुमपुर में इकट्ठी हो जाय । जिस दिन राक्षस का ब्याह होगा, उसी दिन विद्रोह होगा और उसी दिन चंद्रगुप्त राजा होगा !

अलका : परंतु फिलिप्स के द्वंद्व-युद्ध से चंद्रगुप्त को लौट तो आने दीजिये, क्या जाने क्या हो !

चाणक्य : क्या हो ! वही होकर रहेगा जिसे चाणक्य ने विचार करके ठीक कर लिया है । किंतु....अवसर पर एक क्षण का विलंब असफलता का प्रवर्त्तक हो जाता है । (मालविका जाती है)

अलका : गुरुदेव, महानगरी कुसुमपुरी का ध्वंस और नंद-पराजय इस प्रकार संभव है ?

चाणक्य : अलके ! चाणक्य अपना कार्य, अपनी बुद्धि से साधित करेगा । तुम देखती भर रहो और मैं जो बताऊँ—करती चलो । मालविका अभी बालिका है, उसकी रक्षा आवश्यक है । उसे देखो तो—

(अलका जाती है)

चाणक्य : वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे जीवन का प्रभात हुआ था । मेरे उस सरल हृदय में उत्कट इच्छा थी कोई भी सुंदर मन मेरा साथी हो । प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिये मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी ! परंतु संसार—कठोर संसार ने सिखा दिया है कि तुम्हें परखना होगा ! समझदारी आने पर यौवन चला जाता है—जब तक माला गूँथी जाती है, तब तक फूल कुम्हला जाते हैं ! जिससे मिलने के संभार की इतनी धूम-धाम, सजावट, बनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य हृदय को सुंदर और उपयुक्त नहीं बनाये रह सकता । मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक श्यामल कोमल हृदय को मरुभूमि बना देती है । यही तो विषमता है ! मैं—अविश्वास, कूट-चक्र और छलनाओं का कंकाल, कठोरताओं का केंद्र ! आह ! तो इस विश्व में मेरा कोई सुहृद् नहीं ? है—मेरा संकल्प ! अब मेरा आत्माभिमान ही मेरा मित्र है । और थी एक क्षीण रेखा—वह जीवन-पट से धुल चली है । धुल जाने दूँ ? सुवासिनी न-न-न, वह कोई नहीं । मैं अपनी प्रतिज्ञा पर आसक्त हूँ—भयानक रमणीयता है । आज उस प्रतिज्ञा में जन्मभूमि के प्रति कर्त्तव्य का यौवन चमक रहा है । तृणशय्या

पर आधे पेट खाकर सो रहने वाले के सिर पर दिव्य यश का स्वर्ण-मुकुट ! और सामने सफलता का स्मृति-सौध (आकाश की ओर देखकर) वह—इन लाल बादलों में दिग्दाह का धूम मिल रहा है ! भीषण रव से सत्र जैसे चाणक्य का नाम चिल्ला रहे हैं। (देखकर) हैं ! यह कौन भूमि-संधि तोड़कर सर्प के समान निकल रहा है। छिपकर देखूं। (छिप जाता है/एक ढूह की मिट्टी गिरती है/उसमें से वनमानुष के समान शकटार निकलता है)

शकटार : (चारों ओर देखकर आँख बंद कर लेता है—फिर खोलता हुआ) आँखें नहीं सह सकतीं, इन्हीं प्रकाश-किरणों के लिये तड़प रही थीं ! ओह, तीखी हैं ! तो क्या मैं जीवित हूँ ? कितने दिन—कितने महीने—कितने वर्ष हुए ! नहीं स्मरण है। अंधकूप की प्रधानता सर्वोपरि थी। सात लड़के भूख से तड़प कर मरे। कृतज्ञ हूँ—उस अंधकार का—जिसने उन विवर्ण मुखों को नहीं देखने दिया, केवल उनके दम तोड़ने का क्षीण शब्द सुन सका। फिर भी जीवित रहा–सत्तू और नमक पानी से मिलाकर—अपनी नसों से रक्त पीकर जीवित रहा ! प्रतिहिंसा के लिए ! पर अब शेष है—दम घुट रहा है, ओह—(गिर पड़ता है/चाणक्य पास आकर कपड़ा निचोड़ कर मुँह में जल डाल सचेत करता है)

चाणक्य : आह ! तुम कोई दुखी मनुष्य हो ! घबराओ मत, मैं तुम्हारी सहायता के लिये प्रस्तुत हूं।

शकटार : (ऊपर देखकर) तुम ! सहायता करोगे ! आश्चर्य ! मनुष्य, मनुष्य की सहायता करेगा ! वह उसे हिंस्रपशु के समान नोंच न डालेगा। हाँ, यह दूसरी बात है कि वह जोंक, की तरह बिना कष्ट दिए रक्त चूसे। जिसमें कोई स्वार्थ न हो—ऐसी सहायता ! तुम भूखे भेड़िये !

चाणक्य : अभागे मनुष्य ! सबसे चौंककर अलग न उछल ! अविश्वास की चिनगारी पैरों के नीचे से हटा। तुम जैसे दुखी बहुत-से पड़े हैं। यदि सहायता नहीं तो परस्पर का स्वार्थ ही सही।

शकटार : दुःख ! दुःख नाम सुना होगा, या कल्पित आशंका से तुम उसका नाम लेकर चिल्ला उठते होगे। देखा है कभी—सात-सात गोद के लालों को भूख से तड़प कर मरते ? अंधकार की घनी चादर में बरसों भू-गर्भ की जीवित समाधि में एक-दूसरे को अपना आहार देकर स्वेच्छा से मरते—देखा है—प्रतिहिंसा की स्मृति को ठोकरें मार-मार कर जगाते और प्राण विसर्जन करते—देखा है कभी यह कष्ट—उन सबों ने अपना आहार मुझे दिया और पिता होकर भी मैं पत्थर-सा जीवित रहा ! उनका आहार खा डाला—उन्हें मरने दिया ! वे सुकुमार थे, वे सुख की गोद में पले थे, वे नहीं सहन कर सकते थे, अतः सब मर जाते। मै बच रहा प्रतिशोध के लिए ! दानवी प्रतिहिंसा के लिए ! ओह ! उस अत्याचारी नर-राक्षस की अंतड़ियों में से खींचकर एक बार रक्त का फुहारा छोड़ता—इस पृथ्वी को उसी से रँगा देखता।

चाणक्य : सावधान ! (शकटार को उठाता है)

शकटार : सावधान हों वे—जो दुर्बलों पर अत्याचार करते हैं ! पीड़ित पद-दलित, सब तरह लुटा हुआ ! जिसने पुत्रों की हड्डियों से सुरंग खोदी है, नखों से मिट्टी हटाई है, उसके लिये सावधान रहने की आवश्यकता नहीं। मेरी वेदना अपने अंतिम अस्त्रों से सुसज्जित है !

चाणक्य : तो भी तुमको प्रतिशोध लेना है। हमलोग एक ही पथ के पथिक हैं। घबराओ मत। क्या तुम्हारा और कोई भी इस संसार में जीवित नहीं ?

शकटार : बची थी, पर जाने कहाँ है। एक बालिका—अपनी माता की स्मृति—सुवासिनी। पर अब कहाँ है—कौन जाने ?

चाणक्य : क्या कहा—सुवासिनी !

शकटार : हाँ सुवासिनी।

चाणक्य : और तुम शकटार हो ?

शकटार : (चाणक्य का गला पकड़ते) घोंट दूँगा गला, यदि फिर यह नाम तुमने लिया। मुझे नंद से प्रतिशोध ले लेने दो, फिर चाहे डौंड़ी पीटना।

चाणक्य : (उसके हाथ हटाते हुए) वह सुवासिनी नंद की रंगशाला में है। मुझे पहचानते हो ?

शकटार : नहीं तो—(देखता है)

चाणक्य : तुम्हारे प्रतिवेशी, सखा ब्राह्मण चणक का पुत्र विष्णुगुप्त। तुम्हारी दिलाई हुई जिसकी ब्रह्मवृत्ति छीन ली गई, जो तुम्हारा सहकारी जान कर निर्वासित कर दिया गया, मैं उसी चणक का पुत्र चाणक्य हूँ, जिसकी शिखा पकड़ कर राजसभा में खींची गई, जो बंदीगृह में मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था ! करोगे मुझ पर विश्वास ?

शकटार : (विचारता हुआ खड़ा हो जाता है) करूँगा, जो तुम कहोगे वही करूँगा। किसी तरह प्रतिशोध चाहिये।

चाणक्य : तो चलो मेरी झोपड़ी में, इस सुरंग को घास-फूस से ढँक दो। (सुरंग ढँककर दोनों जाते हैं)

७

(नंद के राज-मंदिर का एक प्रकोष्ठ)

नंद : आज क्यों मेरा मन अनायास ही शंकित हो रहा है। कुछ नहीं.... होगा—कुछ।
(सेनापति मौर्य्य की स्त्री को साथ लिये हुए वररुचि का प्रवेश)
कौन है यह स्त्री ?

वररुचि : जय हो देव, यह सेनापति मौर्य्य की स्त्री है।

नंद : क्या कहना चाहती है ?

स्त्री : राजा प्रजा का पिता है। वही उसके अपराधों को क्षमा करके सुधार सकता है। चंद्रगुप्त बालक है, सम्राट् ! उसके अपराध मगध से कोई संबंध नहीं रखते—तब भी वह निर्वासित है। परंतु सेनापति पर क्या अभियोग है ? मैं असहाय—मगध की प्रजा, श्री चरणों में निवेदन करती हूँ—मेरा पति छोड़ दिया जाय। पति और पुत्र दोनों से वंचित न की जाऊँ।

नंद : रमणी ! राजदंड पति और पुत्र के मोहजाल से सर्वथा स्वतंत्र है षड्यंत्रकारियों के लिये बहुत निष्ठुर है—निर्मम है—कठोर है, तुम लोग आग की ज्वाला से खेलने का फल भोगो । नंद इन आँसू भरी आँखों और अंचल पसारकर भिक्षा के अभिनय में नहीं भुलवाया जा सकता ।

स्त्री : ठीक है महाराज ! मैं ही भ्रम में थी । सेनापति मौर्य्य का ही तो अपराध है—जब कुसुमपुर की समस्त प्रजा विरुद्ध थी, जब जारज पुत्र के रक्त-रँगे हाथों से सम्राट् महापद्म की लीला शेष हुई थी, तभी सेनापति को चेतना चाहिये था ! कृतघ्न के साथ उपकार किया है, यह उसे नहीं मालूम था ।

नंद : चुप दुष्टे ! (उसका केश पकड़ कर खींचना चाहता है/वररुचि बीच में आकर रोकता है)

वररुचि : महाराज ! सावधान ! यह अबला है, स्त्री है ।

नंद : यह मैं जानता हूँ कात्यायन ! हटो ।

वररुचि : आप जानते हैं पर इस समय आपको विस्मृत हो गया है ।

नंद : तो क्या मैं तुम्हें भी इस कुचक्र में लिप्त समझूँ ?

वररुचि : यह महाराज की इच्छा पर निर्भर है, और किसी का दास न रहना मेरी इच्छा पर (छुरा रखते हुए) मैं शस्त्र समर्पण करता हूँ ।

नंद : (वररुचि का छुरा उठाकर) विद्रोह ! ब्राह्मण हो न तुम ! मैंने अपने को स्वयं धोखा दिया । जाओ । परंतु ठहरो । प्रतिहार ! (प्रतिहार सामने आता है) इसे बंदी करो । और इस स्त्री के साथ मौर्य्य के समीप पहुँचा दो । (प्रतिहार दोनों को बंदी करता है)

वररुचि : नंद ! तुम्हारे पाप का घड़ा फूटना ही चाहता है ! अत्याचार की चिनगारी साम्राज्य का हरा-भरा कानन दग्ध कर देगी । न्याय का गला घोंटकर उस भीषण पुकार को नहीं दबा सकोगे जो तुम तक पहुँचती है अवश्य, किंतु चाटुकारों द्वारा और ही ढंग से ।

नंद : बस—ले जाओ । (प्रतिहार का बंदियों सहित प्रस्थान)

(स्वगत) क्या अच्छा नहीं किया ? परंतु ये सब मिले हैं जाने दो

(अन्य प्रतिहार का प्रवेश) क्या है ?

प्रतिहार : जय हो देव ! एक संदिग्ध स्त्री राज-मंदिर में घूमती हुई पकड़ी गई है। उसके पास अमात्य राक्षस की मुद्रा और एक पत्र मिला है !

नंद : अभी ले जाओ। (प्रतिहार जाकर मालविका को साथ लाता है) तुम कौन हो ?

मालविका : मैं एक स्त्री हूँ, महाराज !

नंद : पर तुम यहाँ किसके पास आयी हो ?

मालविका : मैं—मैं—मुझे किसी ने शतद्रु-तट से भेजा है। मैं पथ में बीमार हो गयी थी, विलंब हुआ ?

नंद : कैसा विलंब ?

मालविका : इस पत्र को सुवासिनी नाम की स्त्री के पास पहुँचाने में।

नंद : तो किसने तुम्हें भेजा है ?

मालविका : मैं नाम तो नहीं जानती।

नंद : हूँ (प्रतिहार से) पत्र कहाँ है ? (प्रतिहार पत्र और मुद्रा देता है/ नंद उसे पढ़ता है) तुमको बतलाना पड़ेगा, किसने तुमको पत्र दिया है ? बोलो, शीघ्र बोलो, राक्षस ने भेजा था ?

मालविका : राक्षस नहीं, वह मनुष्य था।

नंद : दुष्टे, शीघ्र बता ! वह राक्षस ही रहा होगा।

मालविका : जैसा आप समझ लें।

नंद : (क्रोध से) प्रतिहार ! इसे भी ले जाओ उसी विद्रोहियों की माँद में ठहरो, पहले जाकर शीघ्र सुवासिनी और राक्षस को, चाहे जिस अवस्था में हों, ले आओ। (नंद चिंतित भाव से दूसरी ओर टहलता है / मालयिका बंदी होता है/नंद पैर पटकते) आज सबको एक साथ ही सूली पर चढ़ा दूंगा। नहीं हाथियों के पैरों तले कुचलवाऊँगा। यह कथा समाप्त होना चाहिए। नंद नीच जन्मा है न ! यह विद्रोह उसी के लिये किया जा रहा है, तो फिर उसे भी दिखा देना है कि वह क्या है, नाम सुनकर लोग कांप उठें। प्रेम न सही, भय का ही सम्मान हो।

८

(कुसुमपुर के प्रांतपथ में चाणक्य और पर्वतेश्वर)

चाणक्य : चंद्रगुप्त कहाँ है ?

पर्वतेश्वर : सार्थवाह रूप में युद्ध-व्यवसायियों के साथ आ रहे हैं। शीघ्र ही पहुँच जाने की संभावना है।

चाणक्य : और द्वंद्व में क्या हुआ ?

पर्वतेश्वर : चंद्रगुप्त ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। समस्त उत्तरापथ में फिलिप्स के मारे जाने पर नया उत्साह फैल गया है। आर्य्य ! बहुत से प्रमुख यवन और आर्य्यगण की उपस्थिति में वह युद्ध हुआ—वह खड्ग-परीक्षा देखने योग्य थी ! वह वीर-दृश्य अभिनंदनीय था !

चाणक्य : यवन लोगों के क्या भाव थे ?

पर्वतेश्वर : सिंहरण अपनी सेना के साथ रंगशाला की रक्षा कर रहा था, कुछ हलचल तो हुई, परंतु वह पराजय की क्षोभ था। यूडेमिस, जो उसका सहकारी था, अत्यंत क्रुद्ध हुआ। किसी प्रकार वह ठंढा पड़ा। यूडेमिस सिकंदर की आज्ञा की प्रतीक्षा में रुका था। अकस्मात् सिकंदर के मरने का समाचार मिला। यवन लोग अब अपनी सोच रहे हैं, चंद्रगुप्त सिंहरण को वहाँ छोड़कर यहाँ चला आया, क्योंकि आपका आदेश था। (अलका का प्रवेश)

अलका : गुरुदेव, यज्ञ का आरंभ है।

चाणक्य : मालविका कहाँ है ?

अलका : वह बंद की गयी और राक्षस इत्यादि भी बंदी होने ही वाले हैं। वह भी ठीक ऐसे अवसर पर जब उनका परिणय हो रहा है। क्योंकि आज ही....

चाणक्य : तब तुम जाओ, अलके ! उस उत्सव से तुम्हें अलग न रहना उनके पकड़े जाने के अवसर पर ही नगर में उत्तेजना फैल सकती है। जाओ—शीघ्र (अलका का प्रस्थान)

पर्वतेश्वर : मुझे क्या आज्ञा है ?

चाणक्य : कुछ चुने हुए अश्वारोहियों को साथ लेकर प्रस्तुत रहना। चंद्रगुप्त जब भीतर से युद्ध प्रारंभ करें, उस समय तुमको नगरद्वार पर आक्रमण करना होगा। (गुफा का द्वार खुलता है—मौर्य्य, मालविका, शकटार, वररुचि, पीछे-पीछे चंद्रगुप्त की जननी निकलते हैं) आओ मौर्य्य?

मौर्य्य : हम लोगों के उद्धारकर्त्ता, आप ही महात्मा चाणक्य हैं।

मालविका : हाँ यही हैं।

मौर्य्य : प्रणाम!

चाणक्य : शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए जियो सेनापति! नंद के पापों की पूर्णता ने तुम्हारा उद्धार किया है अब तुम्हारा अवसर है।

मौर्य्य : इन दुर्बल हड्डियों में अंधकूप की भयानकता खटखटा रही है।

शकटार : और रक्तमय गंभीर बीभत्स दृश्य, हत्या का निष्ठुर आह्वान कर रहा है। (चंद्रगुप्त का प्रवेश/माता-पिता के चरण छूता है)

चंद्रगुप्त : पिता! तुम्हारी यह दशा! एक-एक पीड़ा की, प्रत्येक निष्ठुरता की गिनती होगी मेरी माँ! उन सबका प्रतिकार होगा, प्रतिशोध लिया जायेगा! ओह! मेरा जीवन व्यर्थ है! नंद!

चाणक्य : चंद्रगुप्त, सफलता का एक ही क्षण होता है। आवेश और कर्त्तव्य में बहुत अंतर है।

चंद्रगुप्त : गुरुदेव आज्ञा दीजिये!

चाणक्य : देखो, उधर, नागरिक लोग आ रहे हैं। संभवत: यही अवसर है—तुम लोगों के भी भीतर जाने का—विद्रोह फैलाने का। (नागरिकों का प्रवेश)

प० नागरिक : वेण और कंस का शासन क्या दूसरे प्रकार का रहा होगा?

दू० नागरिक : ब्याह की वेदी से वर-वधू को घसीट ले जाना, इतने बड़े नागरिक का यह अपमान! अन्याय है।

ती० नागरिक : सो भी अमात्य राक्षस और सुवासिनी को! कुसुमपुर के दो सुंदर फूल!

चौ० नागरिक : और सेनापति, मंत्री, सबों को अंधकूप में डाल देना।

मौर्य्य : मंत्री, सेनापति और अमात्यों को बंदी बनाकर जो राज्य करता है। वह कैसा अच्छा राजा है। नागरिक ! उसकी कैसी अद्भुत योग्यता है। मगध को गर्व होना चाहिये।

प० नागरिक : गर्व नहीं वृद्ध ! लज्जा होनी चाहिये। ऐसा जघन्य अत्याचार !

वररुचि : यह तो मगध का पुराना इतिहास है। जरासंध का यह अखाड़ा है। एकाधिपत्य की कटुता का यह सदैव से अभ्यस्त है।

दू० नागरिक : अभ्यस्त होने पर भी अब असह्य है।

शकटार : आज आप लोगों को बड़ी वेदना है, एक उत्सव का भंग होना अपनी आँखों से देखा है, नहीं तो जिस दिन शकटार को दंड मिला था, एक अभिजात नागरिक की सकुटुंब हत्या हुई थी, उस दिन जनता कहाँ सो रही थी ?

ती० नागरिक : सच तो, पिता के समान हम लोगों की रक्षा करने वाले मंत्री शकटार—हे भगवान् !

शकटार : मैं ही हूँ। कंकाल-सा जीवित-समाधि से उठ खड़ा हुआ हूँ। मनुष्य मनुष्य को इस तरह कुचलकर स्थिर न रह सकेगा। मैं पिशाच बनकर लौट आया हूँ—अपने निरपराध सात पुत्रों की निष्ठुर हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए—चलोगे साथ ?

ती० नागरिक : मंत्री शकटार ! आप जीवित हैं ?

शकटार : हाँ, महापद्म के जारज पुत्र नंद की—वधिक हिंस्रपशु नंद की—प्रतिहिंसा का लक्ष्य—शकटार मैं ही हूँ !

सब नागरिक : हो चुका न्यायाधिकरण का ढोंग ! जनता की शुभ कामना करने की प्रतिज्ञा नष्ट हो गयी। अब नहीं—आज न्यायाधिकरण में पूछना होगा !

मौर्य्य : और मेरे लिए भी कुछ····

नागरिक : तुम····?

मौर्य्य : सेनापति मौर्य्य—जिसका तुम लोगों का पता ही न था।

नागरिक : आश्चर्य ! हम लोग आज क्या स्वप्न देख रहे हैं ? अभी लौटना चाहिये। चलिये आप लोग भी।

शकटार : परंतु मेरी रक्षा का भार कौन लेता है ? (सब इधर-उधर देखने लगते है, चंद्रगुप्त तनकर खड़ा हो जाता है)

चंद्रगुप्त : मैं लेता हूँ ! मैं उन सब पीड़ित, आघात-जर्जर, पद-दलित लोगों का संरक्षक हूँ—जो मगध की प्रजा हैं ।

चाणक्य : साधु ! चंद्रगुप्त ! (सहसा सब उत्साहित हो जाते हैं, पर्वतेश्वर, चाणक्य और वररुचि को छोड़कर सब जाते हैं)

वररुचि : चाणक्य ! यह क्या दावाग्नि फैला दी तुमने ?

चाणक्य : उत्पीड़न की चिनगारी को अत्याचारी अपने ही अंचल में छिपाये रहता है ! कात्यायन ! तुमने अंधकूप का सुख क्यों लिया ? कोई अपराध तुमने किया था ?

वररुचि : नंद की भूल थी । उसे अब भी सुधारा जा सकता है । ब्राह्मण ! क्षमानिधि ! भूल जाओ !

चाणक्य : प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर हम-तुम साथ ही वैखानस होंगे, कात्यायन ! शक्ति हो जाने दो, फिर क्षमा का विचार करना । चलो पर्वतेश्वर ! सावधान ! (सबका प्रस्थान)

९

(नंद की राजसभा/सुवासिनी और राक्षस बंदी-वेश में)

नंद : अमात्य राक्षस, यह कौन-सी मंत्रणा थी ? यह पत्र तुम्हीं ने लिखा है ?

राक्षस : (पत्र लेकर पढ़ता हुआ)–"सुवासिनी, उस कारागार से शीघ्र निकल भागो, इस स्त्री के साथ मुझसे आकर मिलो । मैं उत्तरापथ में नवीन राज्य की स्थापना कर रहा हूँ । नंद से फिर समझ लिया जायगा" (नंद की ओर देखकर) आश्चर्य ! मैंने तो यह नहीं लिखा ! यह कैसा प्रपंच है,—और किसी का नहीं, उसी ब्राह्मण चाणक्य का महाराज, सतर्क रहिये, अपने अनुकूल परिजनों पर भी विश्वास न कीजिये । कोई भयानक घटना होने वाली है ।

नंद : इस तरह से मैं प्रताड़ित नहीं किया जा सकता—देखो यह तुम्हारी मुद्रा है ! (मुद्रा देता है राक्षस देखकर सिर नीचे कर लेता है) कृतघ्न ! बोल—उत्तर दे !

राक्षस : मैं कहूँ भी, तो आप मानने ही क्यों लगे !

नंद : तो आज तुम लोगों को भी उसी अंधकूप में जाना होगा—प्रतिहार ! (नागरिकों का प्रवेश/राक्षस को शृंखला में जकड़ा हुआ देखकर उन में उत्तेजना)

नागरिक : सम्राट् ! आपसे मगध की प्रजा प्रार्थना करती है कि राक्षस और अन्य लोगों पर भी राजदंड द्वारा किये गये जो अत्याचार हैं, उनका फिर से निराकरण होना चाहिये ।

नंद : क्या ! तुम लोगों को मेर न्याय में अविश्वास है ?

नागरिक : इसके प्रमाण हैं,—शकटार, वररुचि और मौर्य्य !

नंद : (उन लोगों को देखकर) शकटार ! तू अभी जीवित है ?

शकटार : जीवित हूँ नंद ! नियति सम्राटों से भी प्रबल है ।

नंद : यह मैं क्या देखता हूं ! प्रतिहार ! पहले इन विद्रोहियों को बंदी करो । क्या तुम लोगों ने इन्हें छुड़ाया है ?

नागरिक : इनका न्याय हम लोगों के सामने किया जाय, जिससे हम लोगों को राज-नियमों में विश्वास हो सम्राट् ! न्याय को गौरव देने के लिये इनके अपराध सुनने की इच्छा आपकी प्रजा रखती है ।

नंद : प्रजा की इच्छा से राजा को चलना होगा ?

नागरिक : हाँ, महाराज !

नंद : क्या तुम सब-के-सब विद्रोही हो ?

नागरिक : यह सम्राट् अपने हृदय से पूछ देखें ।

शकटार : मेरे सात निरपराध पुत्रों का रक्त !

नागरिक : न्यायाधिकरण की आड़ में इतनी बड़ी नृशंसता !

नंद : प्रतिहार ! इन सबको बंदी बनाओ । (राज-प्रहरियों का सबको बाँधने का उद्योग, दूसरी ओर से सैनिकों के साथ चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चंद्रगुप्त : ठहरो ! (सब स्तब्ध रह जाते हैं) महाराज नंद ! हम सब आपकी प्रजा हैं, मनुष्य हैं, हमें पशु बनने का अवसर न दीजिये !

वररुचि : विचार की तो बात है, यदि सुव्यवस्था से काम चल जाय तो उपद्रव क्यों हो ?

नंद : (स्वगत) विभीषिका ! विपत्ति ! सब अपराधी और विद्रोही एकत्र हुए हैं । (कुछ सोचकर प्रकट) अच्छा मौर्य्य ! तुम हमारे सेनापति हो और तुम वररुचि ! हमने तुम लोगों को क्षमा कर दिया ।

शकटार : और हम लोगों से पूछो ! पूछो नंद—अपनी नृशंसताओं से पूछो ! क्षमा—कौन करेगा ! तुम ? कदापि नहीं ! तुम्हारे घृणित अपराधों का न्याय होगा ।

नंद : (तनकर) तब रे मूर्खो ! देखो नंद की निष्ठुरता ! प्रतिहार ! राजसिंहासन संकट में है ! आओ, आज हमें प्रजा से लड़ना है ! (प्रतिहार प्रहरियों के साथ आगे बढ़ता है / कुछ युद्ध होने के साथ ही राजपक्ष के कुछ लोग मारे जाते हैं और एक सैनिक आकर नगर के ऊपर आक्रमण होने की सूचना देता है / युद्ध करते-करते चंद्रगुप्त नंद को बंदी बनाता है / चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य : नंद ! शिखा खुली है । फिर खिंचवाने की इच्छा हुई—इसीलिए आया हूं । राजपद के अपवाद नंद ! आज तुम्हारा विचार होगा ।

नंद : तुम ब्राह्मण । मेरे टुकड़ों से पले हुए—दरिद्र ! तुम मगध के सम्राट् का विचार करोगे ! तुम सब लुटेरे हो, डाकू हो ! विप्लवी हो—अनार्य्य हो !

चाणक्य : (राजसिंहासन के पास जाकर) नंद ! तुम्हारे ऊपर इतने अभियोग हैं—महापद्म की हत्या, शकटार को बंदी करना—उसके सातों पुत्रों को भूख से तड़पाकर मारना ! सेनापति मौर्य्य की हत्या का उद्योग—उसकी स्त्री और वररुचि—को बंदी बनाना ! कितनी ही कुलीन कुमारियों का सतीत्व-नाश—नगर भर में व्यभिचार का स्रोत बहाना ! ब्रह्मस्व और अनाथों की वृत्तियों का अपहरण ! अंत में सुवासिनी पर अत्याचार—शकटार की एकमात्र बची

हुई संतान, सुवासिनी जिसे तुम अपनी घृणित पाशव-वृत्ति का—

नागरिक : (बीच में रोककर हल्ला मचाते हुए) पर्याप्त है ! यह पिशाच लीला और सुनने की आवश्यकता नहीं, सब प्रमाण यहीं उपस्थित हैं।

चंद्रगुप्त : ठहरिये—(नंद से) कुछ उत्तर देना चाहते हैं।

नंद : कुछ नहीं। ('वध करो—हत्या करो—' का आतंक फैलता है)

चाणक्य : तब भी कुछ समझ लेना चाहिये, नंद ! हम ब्राह्मण हैं। तुम्हारे लिए, भिक्षा माँगकर तुम्हें जीवन-दान दे सकते हैं ! लोगे ? ('नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी' की उत्तेजना/कल्याणी को बंदिनी बनाये पर्वतेश्वर का प्रवेश)

नंद : आह बेटी, असह्य ! मुझे क्षमा करो ! चाणक्य, मैं कल्याणी के संग जंगल में जाकर तपस्या करना चाहता हूँ।

चाणक्य : नागरिक वृंद ! आप लोग आज्ञा दें—नंद को जाने की आज्ञा—

शकटार : (छुरा निकालकर नंद की छाती में घुसेड़ते हुए) सात हत्यायें हैं—नंद यदि सात जन्मों में मेरे ही द्वारा मारा जाय तो मैं उसे क्षमा कर सकता हूँ—मगध नंद के बिना भी जी सकता है।

वररुचि : अनर्थ ! (सब स्तब्ध रह जाते हैं)

राक्षस : चाणक्य, मुझे भी कुछ बोलने का अधिकार है ?

चंद्रगुप्त : अमात्य राक्षस के बंधन खोल दो। आज मगध के सब नागरिक स्वतंत्र हैं ! (राक्षस, सुवासिनी, कल्याणी के बंधन खुलते हैं)

राक्षस : राष्ट्र इस तरह नहीं चल सकता।

चाणक्य : तब ?

राक्षस : परिषद् की आयोजना होनी चाहिये।

नागरिक वृंद : राक्षस, वररुचि, शकटार, चंद्रगुप्त और चाणक्य की सम्मिलित परिषद् की हम घोषणा करते हैं।

चाणक्य : परंतु उत्तरापथ के समान गणतंत्र की योग्यता मगध में नहीं, और मगध पर विपत्ति की भी संभावना है। प्राचीनकाल से मगध साम्राज्य रहा है, इसलिए यहाँ एक सबल और सुनियंत्रित

शासककी आवश्यकता है। आप लोगों को यह जान लेना चाहिये कि यवन अभी हमारी छाती पर हैं।

नागरिक : तो कौन इसके उपयुक्त है ?

चाणक्य : आप ही लोग इसे विचारिये।

शकटार : हम लोगों का उद्धारकर्त्ता, उत्तरापथ के अनेक समरों का विजेता—वीर चंद्रगुप्त !

नागरिक : चंद्रगुप्त की जय !

चाणक्य : अस्तु, बढ़ो, चंद्रगुप्त ! सिंहासन शून्य नहीं रह सकता। अमात्य राक्षस ! सम्राट् का अभिषेक कीजिये।

(मृतक हटाये जाते हैं / कल्याणी दूसरी ओर जाती है / राक्षस चंद्रगुप्त का हाथ पकड़कर सिंहासन पर बैठाता है)

सब नागरिक : सम्राट् चंद्रगुप्त की जय ! मगध की जय !

चाणक्य : मगध के स्वतंत्र नागरिकों को बधाई है। आज आप लोगों के राष्ट्र का नवीन जन्म दिवस है। स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परंतु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है, जहाँ दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है। वत्स चंद्रगुप्त ! स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है, अब मंत्रि-परिषद् की सम्मति से मगध और आर्य्यावर्त के कल्याण में लगो। ('सम्राट् चंद्रगुप्त की जय' का घोष)

पटाक्षेप

चतुर्थ अंक

१

(मगध के राजकीय उपवन में कल्याणी)

कल्याणी : मेरे जीवन के दो स्वप्न थे—दुर्दिन के बाद आकाश के नक्षत्र विलास-सी चंद्रगुप्त की छवि और पर्वतेश्वर से प्रतिशोध, किंतु मगध की राजकुमारी आज अपने ही उपवन में वंदिनी है! मैं वही तो हूँ—जिसके संकेत पर मगध का साम्राज्य चल सकता था! वही शरीर है, वही रूप हैं, वही हृदय है, पर छिन गया अधिकार और मनुष्य का मान-दंड—ऐश्वर्य! अब तुलना में सबसे छोटी हूँ। जीवन लज्जा की रंगभूमि बन रहा है (सिर झुका लेती है) तो जब नंद वंश का कोइ न रहा, तब एक राजकुमारी बचकर क्या करेगी? (मद्यप की-सी चेष्टा करते हुए पर्वतेश्वर को प्रवेश करते देख चुप हो जाती है)

पर्वतेश्वर : मगध मेरा है—आधा भाग मेरा है! और मुझसे कुछ पूछा तक न गया! चंद्रगुप्त अकेले सम्राट् बन बैठा! कभी नहीं यह मेरे जीते जी नहीं हो सकता! (सामने देखकर) कौन है? यह कोई अप्सरा होगी! अरे! कोई अपदेवता न हो! अरे—(प्रस्थान)

कल्याणी : मगध के राज-मंदिर उसी तरह खड़े हैं। गंगा शोण से उसी स्नेह से मिल रही है, नगर का कोलाहल पूर्ववत् है। परतु न रहेगा एक नंद-वंश फिर क्या करूँ? आत्महत्या करूँ! नहीं, जीवन इतना सस्ता नहीं! अहा, देखो मधुर आलोकवाला चंद्र! उसी प्रकार नित्य—जैसे एकटक इस पृथ्वी को देख रहा हो! कुमुद-बंधु—तुम मेरे भी बंधु बन जाओ, इस छाती की जलन मिटा दो! (गाती है)

सुधा-सीकर से नहला दो!

लहरें डूब रही हों रस में,
रह न जायँ वे अपने बस में,

रूप-राशि इस व्यथित हृदय सागर को—बहला दो !
अंधकार उजला हो जाये,
हँसी हंसमाला मँडराये,
मधु राका आगमन कलरवों के मिस—कहला दो !
करुणा के अंचल पर निखरे,
घायल आँसू हैं जो बिखरे,
ये मोती बन जायँ मृदुल कर से लो—सहला दो !
(पर्वतेश्वर का फिर प्रवेश)

पर्वतेश्वर : तुम कौन हो सुंदरी ? मैं भ्रमवश चला गया था !

कल्याणी : तुम कौन हो ?

पर्वतेश्वर : पर्वतेश्वर।

कल्याणी : मैं हूँ कल्याणी, जिसे नगर-अवरोध के समय तुमने बंदी बनाया था।

पर्वतेश्वर : राजकुमारी ! नंद की दुहिता तुम्हीं हो ?

कल्याणी : हाँ पर्वतेश्वर !

पर्वतेश्वर : तुम्हीं से मेरा विवाह होने वाला था ?

कल्याणी : अब यम से होगा।

पर्वतेश्वर : नहीं सुंदरी, ऐसा भरा हुआ यौवन !

कल्याणी : सब छीन कर अपमान भी !

पर्वतेश्वर : तुम नहीं जानती हो, मगध का आधा राज्य मेरा है। तुम मेरी प्रियतमा होकर सुखी रहोगी।

कल्याणी : मैं अब सुख नहीं चाहती। सुख अच्छा है या दुःख—मैं स्थिर न कर सकी। तुम मुझे कष्ट न दो।

पर्वतेश्वर : हमारे-तुम्हारे मिल जाने से मगध का पूरा राज्य हम लोगों का हो जायगा। उत्तरापथ की संकटमयी परिस्थिति से अलग रहकर यहीं शांति मिलेगी।

कल्याणी : चुप रहो।

पर्वतेश्वर : सुंदरी तुम्हें देख लेने पर ऐसा नहीं हो सकता !
(उसे पकड़ना चाहता है, वह भागती है, परंतु पर्वतेश्वर पकड़ ही

लेता है / कल्याणी उसी का छुरा निकालकर उसका वध करती है / चीत्कार सुनकर चंद्रगुप्त आ जाता है)

चंद्रगुप्त : कल्याणी ! कल्याणी ! यह क्या !!

कल्याणी : जो होना था। चंद्रगुप्त ! यह पशु मेरा अपमान करना चाहता था—मुझे भ्रष्ट करके, अपनी संगिनी बनाकर पूरे मगध पर अधिकार करना चाहता था। परंतु मौर्य्य ! कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरुष को—वह था चंद्रगुप्त।

चंद्रगुप्त : क्या यह सच है कल्याणी !

कल्याणी : हाँ, यह सच है। परंतु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए, इसलिए उस प्रणय को—प्रेम-पीड़ा को—मैं पैरों से कुचल कर, दबा कर खड़ी रही ! अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा। पिता ! लो मैं भी आयी हूँ। (अचानक छुरी मारकर आत्महत्या करती है, चंद्रगुप्त उसे गोद में उठा लेता है)

चाणक्य : (प्रवेश करके) चंद्रगुप्त ! आज तुम निष्कंटक हुए !

चंद्रगुप्त : गुरुदेव ! इतनी क्रूरता ?

चाणक्य : महत्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है ! चलो अपना काम करो, विवाद करना तुम्हारा काम नहीं। अब तुम स्वच्छंद होकर दक्षिणापथ जाने की आयोजना करो (प्रस्थान/चंद्रगुप्त कल्याणी को लिटा देता है)

२

(पथ में राक्षस और सुवासिनी)

सुवासिनी : राक्षस ! मुझे क्षमा करो !

राक्षस : क्यों सुवासिनी; यदि वह बाधा एक क्षण और रुकी रहती तो क्या हम लोग इस सामाजिक नियम के बंधन से बंध न गए होते ! अब क्या हो गया ?

सुवासिनी : अब पिताजी की अनुमति आवश्यक हो गयी है।

राक्षस : (व्यंग से) क्यों ? क्या अब वह तुम्हारे ऊपर अधिक नियंत्रण

रखते हैं ? अब उनका तुम्हारे विगत जीवन से कुछ संपर्क नहीं ? क्या....

सुवासिनी : अमात्य ! मैं अनाथ थी, जीविका के लिए मैंने चाहे कुछ भी किया हो, पर स्त्रीत्व नहीं बेचा ।

राक्षस : सुवासिनी, मैंने सोचा था, तुम्हारे अंक में सिर रखकर विश्राम करते हुए मगध की भलाई से विपथगामी न हूँगा ! पर तुमने ठोकर मार दिया ? क्या तुम नहीं जाननी कि मेरे भीतर एक दुष्ट-प्रतिभा सदैव सचेष्ट रहती है ? अवसर न दो, उसे न जगाओ ! मुझे पाप से बचाओ !

सुवासिनी : मैं तुम्हारा प्रणय अस्वीकार नहीं करती । किंतु अब इसका प्रस्ताव पिताजी से करो । तुम मेरे रूप और गुण के ग्राहक हो, और सच्चे ग्राहक हो, परंतु राक्षस ! मैं जानती हूँ कि यदि ब्याह छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार से मैं तुम्हारी हो जाती तो तुम ब्याह से अधिक सुखी होते । उधर पिता ने, जिनके लिए मेरा चारित्र्य, मेरी निष्कलंकता नितांत वांछनीय हो सकती है, मुझे इस मलिनता के कीचड़ से कमल के समान हाथों में लिया है ! मेरे चिर दुखी पिता ! राक्षस, तुम वासना से उत्तेजित हो, तुम नहीं देख रहे हो कि सामने एक जुड़ता हुआ घायल हृदय बिछुड़ जायगा, एक पवित्र कल्पना स ज ही नष्ट हो जायगी !

राक्षस : यह मैं मान लेता, कदाचित् इस पर पूर्ण विश्वास भी कर लेता, परंतु सुवासिनी, मुझे शंका है । चाणक्य का तुम्हारा बाल्य परिचय है । तुम शक्तिशाली की उपासना....

सुवासिनी : ठहरो अमात्य ! मैं चाणक्य को इधर तो एक प्रकार से विस्मृत ही हो गयी थी, तुम इस सोयी हुई भ्रांति को न जगाओ ! (प्रस्थान)

राक्षस : चाणक्य भूल सकता है ? कभी नहीं । वह राजनीति का आचार्य हो जाय, वह विरक्त तपस्वी हो जाय, परंतु सुवासिनी का चित्र—यदि अंकित हो गया है तो—उहुँ—(सोचता है)

(नेपथ्य से गान)

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला ?
पड़ता है पतंग-सा इसमें मन होकर मतवाला,
सांध्य गगन-सी रागमयी यह बड़ी तीव्र है हाला,
लौह शृंखला से न कड़ी क्या—यह फूलों की माला ?

(चैतन्य होकर) तो चाणक्य से फिर मेरी टक्कर होगी, होने दो ! वह अधिक सुखदायी होगा। आज से हृदय का यही ध्येय रहा। शकटार से किस मुँह से प्रस्ताव करूँ कि वह सुवासिनी को मेरे हाथ में सौंप दे, यह असंभव है ! तो मगध में फिर एक आँधी आवे ! चलूँ, चंद्रगुप्त भी तो नहीं है, चंद्रगुप्त सम्राट् हो सकता है—तो दूसरे भी इसके अधिकारी हैं। कल्याणी की मृत्यु से बहुत से लोग उत्तेजित हैं। आहुति की आवश्यकता है, वह्नि प्रज्वलित है। (प्रस्थान)

३

(परिषद्-गृह)

राक्षस : (प्रवेश करके) तो आप लोगों की सम्मति है कि विजयोत्सव न मनाया जाय ? मगध का उत्कर्ष, उसके गर्व का दिन यों ही फीका रह जाय !

शकटार : मैं तो चाहता हूँ, प तु आर्य्य चाणक्य की सम्मति इसमें नहीं है।

कात्यायन : जो कार्य बिना किसी आडंबर के हो जाय, वही तो अच्छा है।
(मौर्य्य सेनापति और उनकी स्त्री का प्रवेश)

मौर्य्य : विजयी होकर चंद्रगुप्त लौट रहा है, हम लोग आज भी उत्सव न मनाने पावेंगे ? राजकीय आवरण में यह कैसी दासता है !

मौर्य्य-पत्नी : तब यही स्पष्ट हो जाना चाहिये कि कौन इस साम्राज्य का अधीश्वर है ! विजयी चंद्रगुप्त अथवा यह ब्राह्मण या परिषद् ?

चाणक्य : (राक्षस की ओर देखकर) राक्षस तुम्हारे मन में क्या है ?

राक्षस : मैं क्या जानूँ, जैसी सब लोगों की इच्छा।

चाणक्य : मैं अपने अधिकार और दायित्व को समझ कर कहता हूँ कि यह उत्सव न होगा।

मौर्य्य-पत्नी : तो मैं ऐसी पराधीनता में नहीं रहना चाहती (मौर्य्य से) समझा न ! हम लोग आज भी बंदी हैं।

मौर्य्य : (क्रोध से) क्या कहा—बंदी ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता—हम लोग चलते हैं ! देखूँ किसकी सामर्थ्य है जो रोके। अपमान से जीवित रहना मौर्य्य नहीं जानता है। चलो—

(चाणक्य और कात्यायन को छोड़कर सब जाते हैं)

कात्यायन : विष्णुगुप्त, तुमने समझकर ही तो ऐसा किया होगा। फिर भी मौर्य्य का इस तरह चले जाना चंद्रगुप्त को····

चाणक्य : बुरा लगेगा ! क्यों भला लगने के लिये मैं कोई काम नहीं करता कात्यायन ! परिणाम में भलाई ही मेरे कामों की कसौटी है। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी चले जाओ। बको मत !

(कात्यायन का प्रस्थान) कारण समझ में नहीं आता—यह वात्याचक्र क्यों ? (विचारता हुआ)--क्या कोई नवीन अध्याय खुलने वाला है ? अपनी विजयों पर मुझे विश्वास है, फिर यह क्या ? (सोचता है/ सुवासिनी का प्रवेश)

सुवासिनी : विष्णुगुप्त !

चाणक्य : कहो सुवासिनी !

सुवासिनी : अभी परिषद्-गृह से जाते हुये पिताजी बहुत दुखी दिखाई दिए। तुमने अपमान किया क्या ?

चाणक्य : यह तुमसे किसने कहा ? इस उत्सव को रोक देने से साम्राज्य का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मौर्य्य का जो कुछ है, वह मेरे दायित्व पर है। अपमान हो या मान, मैं उसका उत्तरदायी हूँ। और, पितृव्य-तुल्य शकटार को मैं अपमानित करूँगा, यह तुम्हें कैसे विश्वास हुआ।

सुवासिनी : तो राक्षस ने ऐसा क्यों....

चाणक्य : कहा—ऐं ? सो तो कहना ही चाहिये। और तुम्हारा भी उस पर विश्वास होना आवश्यक है, क्यों न सुवासिनी ?

सुवासिनी : विष्णुगुप्त ! मैं एक समस्या में डाल दी गयी हूँ।

चाणक्य : तुम स्वयं पड़ना चाहती हो, कदाचित् यह ठीक भी है।

सुवासिनी : व्यंग न करो, तुम्हारी कृपा मुझ पर होगी ही, मुझे इसका विश्वास है।

चाणक्य : मैं तुमसे बाल्य-काल से परिचित हूँ, सुवासिनी ! तुम खेल में भी हारने के समय रोते हुए हँस दिया करतीं और तब मैं हार स्वीकार कर लेता। इधर तो तुम्हारा अभिनय का अभ्यास भी बढ़ गया है। तब तो···(देखने लगता है)

सुवासिनी : यह क्या, विष्णुगुप्त, तुम संसार को अपने वश में करने का संकल्प रखते हो। फिर अपने को नही ? देखो दर्पण लेकर—तुम्हारी आँखों में तुम्हारा यह कौन-सा नवीन चित्र है। (प्रस्थान)

चाणक्य : क्या—मेरी दुर्बलता ! नहीं। कौन है !

दौवारिक : (प्रवेश करके) जय हो आर्य्य, रथ पर मालविका आयी है।

चाणक्य : उसे सीधे मेरे पास लिवा आओ !

(दौवारिक का प्रस्थान/एक चर का प्रवेश)

चर : आर्य्य, सम्राट् के पिता और माता दोनों व्यक्ति रथ पर अभीं-अभीं बाहर गये हैं ! (जाता है)

चाणक्य : जाने दो ! इनके रहने से चंद्रगुप्त के एकाधिपत्य में बाधा होती। स्नेहातिरेक से वह कुछ-का-कुछ कर बैठता। (दूसरे चर का प्रवेश)

दूसरा चर : (प्रणाम करके) जय हो आर्य्य, वाल्हीक में नयी हलचल है। विजेता सिल्यूकस अपनी पश्चिमी-राजनीति से स्वतंत्र हो गया है, अब वह सिकंदर के पूर्वी-प्रांतों की ओर दत्तचित्त है। वाल्हीक की सीमा पर नवीन यवन-सेना के शस्त्र चमकने लगे हैं।

चाणक्य : (चौंककर) और गांधार का समाचार ?

दूसरा चर : अभी कोई नवीनता नहीं।

चाणक्य : जाओ। (चर का प्रस्थान) क्या उसका भी समय आ गया ? तो ठीक है। ब्राह्मण ! अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रह ! कुछ चिंता नहीं, सब सुयोग आप ही चले आ रहे हैं।
(ऊपर देखकर हँसता है/मालविका का प्रवेश)

मालविका : आर्य्य, प्रणाम करती हूँ। सम्राट् ने श्रीचरणों में सविनय प्रणाम करके निवेदन किया है कि आपके आशीर्वाद से दक्षिणापथ में अपूर्व सफलता मिली, किंतु सुदूर दक्षिण जाने के लिए आपका निषेध सुनकर लौटा आ रहा हूँ। सीमांत के राष्ट्रों ने भी मित्रता स्वीकार कर ली है।

चाणक्य : मालविका, विश्राम करो। सब बातों का विवरण एक साथ ही लूँगा।

मालविका : परंतु आर्य्य स्वागत का कोई उत्साह राजधानी में नहीं।

चाणक्य : मालविका, पाटलिपुत्र षड्यंत्रो का केंद्र हो रहा है ! सावधान ! चंद्रगुप्त के प्राणों की रक्षा तुम्हीं को करनी होगी।

४

(प्रकोष्ठ में चंद्रगुप्त)

चंद्रगुप्त : विजयों की सीमा है, परंतु अभिलाषाओं की नही ! मन ऊब-सा गया है। झंझटों से घड़ी-भर अवकाश नहीं। गुरुदेव और क्या चाहते हैं, समझ में नहीं आता। इतनी उदासी क्यों ! मालविका !

मालविका : (प्रवेश करके) सम्राट् की जय हो।

चंद्रगुप्त : मैं सबसे विभिन्न एक भय-प्रदर्शन-सा बन गया हूँ। मेरा कोई अंतरंग नहीं, तुम भी मुझे सम्राट् कहकर पुकारती हो !

मालविका : देव, फिर मैं क्या कहूँ !

चंद्रगुप्त : स्मरण आता है—मालव का उपवन और उसमें अतिथि के रूप में मेरा रहना।

मालविका : सम्राट्, अभी कितने ही भयानक संघर्ष सामने है !

चंद्रगुप्त : संघर्ष ! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो मालविका ! आशा और निराशा का युद्ध, भावों और अभावों का द्वंद्व ! कोई कमी नहीं, फिर भी न जाने कौन मेरी संपूर्ण सूची में रिक्त-चिह्न लगा देता है। मालविका, तुम मेरी तांबूलवाहिनी हो, मेरे विश्वास की—मित्रता की प्रतिकृति हो। देखो, मैं दरिद्र हूँ कि नहीं, तुमसे मेरा कोई रहस्य गोपनीय नहीं ! मेरे हृदय में कुछ है कि नहीं, टटोलने से भी नहीं जान पड़ता ?

मालविका : आप महापुरुष हैं, साधारणजन-सुलभ दुर्बलता न होनी चाहिये आपमें देव ! बहुत दिनों पर मैंने एक माला बनायी है।

(माला पहनाती है)

चंद्रगुप्त : मालविका, इन फूलों का रस तो भौंरे ले चुके हैं।

मालविका : निरीह कुसुमों पर दोषारोपण क्यों ? उनका काम है सौरभ बिखेरना, यह उनका मुक्त दान है। उसे चाहे भ्रमर ले या पवन !

चंद्रगुप्त : कुछ गाओ तो मन बहल जाय। (मालविका गाती है)

मधुप कब एक कली का है !
पाया जिसमें प्रेम रस, सौरभ और सुहाग,
बेसुध हो उस कली से, मिलता भर अनुराग,
विहारी—कुंजगली का है !
कुसुम धूल से धूसरित, चलता है उस राह,
काँटों में उलझा तदपि, रही लगन की चाह,
बावला—रंगरली का है।
हो मल्लिका, सरोजिनी, या यूथी का पुंज,
अलि को केवल चाहिये, सुखमय क्रीड़ा-कुंज,
मधुप कब एक कली का है !

चंद्रगुप्त : मालविका, मन मधुप से भी चंचल और पवन से भी प्रगतिशील है—वेगवान है।

मालविका : उसका निग्रह करना ही महापुरुषो का स्वभाव है देव ! (प्रतिहारी का प्रवेश और संकेत/मालविका उससे बात करके लौटती है)

चंद्रगुप्त : क्या है ?

मालविका : कुछ नहीं, कहती थी कि यह प्राचीन राज-मंदिर अभी परिष्कृत नहीं, इसलिए मैंने चंद्रसौध में आपके शयन का प्रबंध करने के लिए कह दिया है।

चंद्रगुप्त : जैसी तुम्हारी इच्छा—(पान करता हुआ) कुछ और गाओ मालविका ! आज तुम्हारे स्वर में स्वर्गीय मधुरिमा है।

(मालविका गाती है)

बज रही वंशी आठो याम की।
अब तक गूँज रही है बोली प्यारे मुख अभिराम की
हुए चपल मृगनैन मोह-वश बजी विपंची काम की,
रूप-सुधा के दो दृग प्यालों ने ही मति बेकाम की !
बज रही वंशी आठो याम की।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी : जय हो देव—शयन का समय हो गया।

(प्रतिहारी, कंचुकी सहित चंद्रगुप्त का प्रस्थान)

मालविका : जाओ प्रियतम ! सुखी जीवन बिताने के लिए, और मैं रहती हूँ हूँ चिर-दुखी जीवन का अंत करने के लिए। जीवन एक प्रश्न है, और मरण है उसका अटल उत्तर। आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है—"आज घातक इस शयनगृहमें आवेंगे, इसलिए चंद्रगुप्त यहाँ न सोने पावें, और षड्यंत्रकारी पकड़े जायँ।" (शय्या पर बैठकर) यह चंद्रगुप्त की शय्या है। ओह, आज प्राणों में कितनी मादकता है। मैं....कहाँ हूँ ? कहाँ ! स्मृति, तू मेरी तरह सो जा ! अनुराग तू रक्त से भी रंगीन बन जा ! (गाती है)

ओ मेरी जीवन की स्मृति—ओ अंतर के आतुर अनुराग !
बैठ गुलाबी विजन उषा में गाते कौन मनोहर राग ?
चेतन सागर ऊर्मिल होता यह कैसी कंपनमय तान,
यों अधीरता से न मींड़ लो अभी हुए हैं पुलकित प्रान !
कैसा है यह प्रेम तुम्हारा युगल मूर्ति की बलिहारी !

यह उन्मत्त विलास—बता दो कुचलेगा किसकी क्यारी ?
इस अनंत जलनिधि के नाविक, हे मेरे अनंग अनुराग !
पाल सुनहला बन, तनती है स्मृति, यों उस अतीत में जाग ।
कहाँ ले चले कोलाहल से मुखरित तट को छोड़ सुदूर—
आह ! तुम्हारे निर्दय डाँडों से होती हैं लहरें चूर !
देख नहीं सकते तुम दोनों चकित निराशा है भीमा,
बहको मत, क्या न है बता दो—क्षितिज तुम्हारी नव सीमा ?
(शयन)

६

(प्रभात में राजमंदिर का एक प्रांत)

चंद्रगुप्त : (अकेले टहलता हुआ) चतुर सेवक के समान संसार को जगाकर अंघकार हट गया। रजनी की निस्तब्धता काकली से चंचल हो उठी है। नीला आकाश स्वच्छ होने लगा है, या निद्राक्लांत निशा, उषा की शुभ्र चादर ओढ़कर नींद की गोद में लेटने चली है। यह जागरण का अवसर है। जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र मे अवतीर्ण होना। और कर्म-क्षेत्र क्या है ? जीवनसंग्राम ! किंतु भीषण संघर्ष करके भी मैं कुछ नहीं हूँ। मेरी सत्ता एक कठ-पुतली-सी है। तो फिर····मेरे पिता, मेरी माता, इनका तो सम्मान आवश्यक था। वे चले गये, मैं देखता हूँ कि नागरिक तो क्या, मेरे आत्मीय भी आनंद मनाने से वंचित किये गये। यह परतंत्रता कब तक चलेगी ? प्रतिहार !

प्रतिहार : (प्रवेश करके) जय हो देव !

चंद्रगुप्त : आर्य्य चाणक्य को शीघ्र लिवा लाओ ! (प्रतिहार का प्रस्थान) (टहलते हुए) प्रतिकार आवश्यक है। (चाणक्य का प्रवेश) आर्य्य, प्रणाम !

चाणक्य : कल्याण हो आयुष्मन्, आज तुम्हारा प्रणाम भारी-सा है !

चंद्रगुप्त : मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

चाणक्य : यह तो मैं पहले से समझता था ! तो तुम अपने स्वागत के लिए लड़कों के सदृश रूठे हो ?

चंद्रगुप्त : नहीं आर्य्य, मेरे माता-पिता—मैं जानना चाहता हूँ कि उन्हें किसने निर्वासित किया ?

चाणक्य : जान जाओगे तो उसका वध करोगे, क्यों ? (हँसता है)

चंद्रगुप्त : हँसिये मत ! गुरुदेव ! आपकी मर्यादा रखनी चाहिये, यह मैं जानता हूँ। परंतु वे मेरे माता-पिता थे, यह आपको भी जानना चाहिये।

चाणक्य : तभी तो मैंने उन्हें उपयुक्त अवसर दिया। अब उन्हें आवश्यकता थी शांति की, उन्होंने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया है। इसमें खेद करने की कौन बात है ?

चंद्रगुप्त : यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं ? केवल साम्राज्य का ही नहीं, देखता हूँ, आप मेरे कुटुंब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।

चाणक्य : चंद्रगुप्त ! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनंद-समुद्र में शांति-द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण—मैं, चंद्र-सूर्य-नक्षत्र मेरे दीप थे, अनंत आकाश वितान था, शस्यश्यामला कोमला विश्वंभरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म था, संतोष धन था। उस अपनी—ब्राह्मण की—जन्मभूमि को छोड़कर कहाँ आ गया। सौहार्द के स्थान पर कुचक्र, फूलों के प्रतिनिधि काँटे, प्रेम के स्थान में भय। ज्ञानामृत के परिवर्तन में कुमंत्रणा। पतन और कहाँ तक हो सकता है ! ले लो मौर्य्य चंद्रगुप्त ! अपना अधिकार—छीन लो। यह मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छायाचित्र, काल्पनिक महत्त्व के पीछे भ्रमपूर्ण अनुसंधान करता दौड़ रहा हूँ। शांति खो गयी, स्वरूप विस्मृत हो गया ! जान गया मैं कहाँ और कितने नीचे हूँ ! (प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : जाने दो। (दीर्घ निःश्वास लेकर) तो क्या मैं असमर्थ हूँ ? उँह, सब हो जायगा।

सिंहरण : (प्रवेश करके) सम्राट् की जय हो ! कुछ विद्रोही और षड्यंत्रकारी पकड़े गये हैं। एक बड़ी दुखद घटना भी हो गयी है।

चंद्रगुप्त : (चौंककर) क्या ?

सिंहरण : मालविका की हत्या....(गद्गद् कंठ से) आपका परिच्छद पहन कर वह आप की ही शय्या पर लेटी थी।

चंद्रगुप्त : तो क्या, उसने इसीलिये मेरे शयन का प्रबंध दूसरे प्रकोष्ठ में किया ! आह ! मालविका !

सिंहरण : आर्य्य चाणक्य की सूचना पाकर नायक पूरे गुल्म के साथ राजमंदिर की रक्षा के लिए प्रस्तुत था। एक छोटा-सा युद्ध होकर वे हत्यारे पकड़े गये। परंतु उनका नेता राक्षस निकल भागा।

चंद्रगुप्त : क्या ! राक्षस उनका नेता था ?

सिंहरण : हाँ सम्राट् ! गुरुदेव बुलाये जायँ !

चंद्रगुप्त : वही तो नहीं हो सकता, वे चले गये। कदाचित् न लौटेंगे।

सिंहरण : ऐसा क्यों ? क्या आपने कुछ कह दिया ?

चंद्रगुप्त : हाँ सिंहरण ! मैंने अपने माता-पिता के चले जाने का कारण पूछा था !

सिंहरण : (निश्वास लेकर) तो नियति कुछ अदृष्ट का सृजन कर रही है ! सम्राट्, मैं गुरुदेव को खोजने जाता हूँ !

चंद्रगुप्त : (विरक्त से) जाओ ठीक है—अधिक हर्ष, अधिक उन्नति के बाद ही तो अधिक दुःख और पतन की बारी आती है—

(सिंहरण का प्रस्थान) पिता गये, माता गयी, गुरुदेव गये, कंधे-से-कंधा मिलाकर प्राण देने वाला चिर-सहचर सिंहरण गया ! तो भी चंद्रगुप्त को रहना पड़ेगा, और रहेगा, परंतु मालविका ! आह वह स्वर्गीय कुसुम ! (चिंतित भाव से प्रस्थान)

६

(सिंधु तट पर पर्णकुटीर में चाणक्य और कात्यायन)

चाणक्य : कात्यायन, सो नहीं हो सकता। मैं अब मंत्रित्व नहीं ग्रहण करने का। तुम यदि किसी प्रकार मेरा रहस्य खोल दोगे, तो मगध का अनिष्ट करोगे।

कात्यायन : तब मैं क्या करूँ ? चाणक्य, मुझे तो अब इस राज-काज में पड़ना अच्छा नहीं लगता।

चाणक्य : जब तक गांधार का उपद्रव है, तब तक तुम्हें बाध्य होकर करना पड़ेगा। बताओ, नया समाचार क्या है ?

कात्यायन : राक्षस सिल्यूकस की कन्या को पढ़ाने के लिए वहीं रहता है और यह सारा कुचक्र उसी का है ! वह इन दिनों वाल्हीक की ओर गया है। मैं अपना वार्त्तिक पूरा कर चुका—इसलिए मगध से अवकाश लेकर आया था ! चाणक्य, अब मैं मगध जाना चाहता हूँ। यवन-शिविर में अब मेरा जाना असंभव है।

चाणक्य : जितना शीघ्र हो सके, मगध पहुँचो। मैं सिंहरण को ठीक रखता हूँ। तुम चंद्रगुप्त को भेजो। सावधान, उसे न मालूम हो कि मैं यहाँ हूं ? अवसर पर स्वयं उपस्थित हो जाऊँगा। देखो, शकटार और तुम्हारे भरोसे मगध रहा ! कात्यायन; यदि सुवासिनी को भेजने तो कार्य में आशातीत सफलता होती। समझे ?

कात्यायन : (हँसकर) यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम सुवासिनी— अच्छा·······विष्णुगुप्त ! गार्हस्थ्य—जीवन कितना सुंदर है।

चाणक्य : मूर्ख हो अब हम-तुम साथ ब्याह करेंगे।

कात्यायन : मैं ? मुझे नहीं—मेरी गृहिणी तो है !

चाणक्य : (हँसकर)एक ब्याह और सही। अच्छा बताओ, काम कहाँ तक हुआ?

कात्यायन : (पत्र देता हुआ) हाँ यह लो, यवन शिविर का विवरण है। परंतु, विष्णुगुप्त, एक बात कहे बिना न रह सकूँगा। यह यवन-बाला सिर से पैर तक आर्य्य संस्कृति में पगी है। उसका अनिष्ट ?

चाणक्य : (हँसकर) कात्यायन, तुम सच्चे ब्राह्मण हो ! यह करुणा और सौहार्द का उद्रेक ऐसे ही हृदयों में होता है । परंतु निष्ठुर—हृदयहीन ! मुझे तो केवल अपने हाथों खड़ा किते हुए एक साम्राज्य का दृश्य देख लेना है !

कात्यायन : फिर भी चाणक्य, उसका सरल मुख-मंडल—उस लक्ष्मी का अमंगल !

चाणक्य : (हँसकर) तुम पागल तो नहीं हो ?

कात्यायन : तुम हँसो मत चाणक्य ! तुम्हारा हँसना तुम्हारे क्रोधसे भी भयानक है ! प्रतिज्ञा करो कि उसका अनिष्ट न करूँगा । बोलो !

चाणक्य : कात्यायन, अलक्षेंद्र कितने विकट परिश्रम से भारतवर्ष के बाहर किया गया—यह तुम भूल गये ? अभी है कितने दिनों की बात ! अब इस सिल्यूकस को क्या हुआ जो चला आया ! तुम नहीं जानते कात्यायन, इसी सिल्यूकस ने चंद्रगुप्त की रक्षा की थी, नियति अब उन्हीं दोनों की एक दूसरे के विपक्ष में खड्ग खींचे हुए खड़ा कर रही है !

कात्यायन : कैसे आश्चर्य की बात है !

चाणक्य : परंतु इससे क्या, वह तो होकर रहेगा, जिसे मैंने स्थिर कर लिया है ! वर्त्तमान भारत की नियति मेरे हृदय पर जलद-पटल में बिजली के समान नाच उठती है—फिर मैं क्या करूँ ।

कात्यायन : तुम निष्ठुर हो—यह हँसी !

चाणक्य : अच्छा तुम सदय हो कर एक बात कर सकोगे ? बोलो—चंद्रगुप्त और उस यवन-बाला के परिणय में आचार्य बनोगे ?

कात्यायन : क्या कह रहे हो ? यह हँसी !

चाणक्य : यही है तुम्हारी दया की परीक्षा—देखूँ तुम क्या करते हो । क्या इसमें यवन-बाला का अमंगल है ?

कात्यायन : (सोचकर) मंगल है—मैं प्रस्तुत हूँ ।

चाणक्य : (हँसकर) तब तुम निश्चय ही एक सहृदय व्यक्ति हो ।

कात्यायन : अच्छा, तो मैं जाता हूँ ।

चाणक्य : हाँ, जाओ । स्मरण रखना, हम लोगों के जीवन में यह अंतिम

संघर्ष है। मुझे आज आंभीक से मिलना है। यह लोलुप राजा— देखूँ, क्या करता है। (कात्यायन का प्रस्थान/चर का प्रवेश)

चर : महामात्य की जय हो।

चाणक्य : इस समय जय की बड़ी आवश्यकता है आंभीक को यदि जय कर सका को, सर्वत्र जय है। बोलो आंभीक ने क्या कहा ?

चर : वे स्वयं आ रहे हैं।

चाणक्य : आने दो तुम जाओ। (चर का प्रस्थान/आंभीक का प्रवेश)

आंभीक : प्रणाम, ब्राह्मण देवता !

चाणक्य : कल्याण हो राजन् ! तुम्हें भय तो नहीं लगता ? मैं एक दुर्नाम मनुष्य हूँ।

आंभीक : नहीं आर्य्य, आप कैसी बात कहते हैं !

चाणक्य : तो ठीक है, इसी तक्षशिला के मठ में एक दिन मैंने कहा था— 'सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय—तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य्यजाति पतन के कगार पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है।'

आंभीक : स्मरण है।

चाणक्य : तुम्हारी भूल ने कितना कुत्सित दृश्य दिखाया—इसे भी संभवतः तुम न भूले होगे।

आंभीक : नहीं।

चाणक्य : तुम जानते हो चंद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के स्वर्णगिरि से पंचनद तक, सौराष्ट्र से बंग तक एक महान् साम्राज्य स्थापित किया है। यह साम्राज्य मगध का नहीं है, यह आर्य्य साम्राज्य है। उत्तरापथ के सब प्रमुख गणतंत्र मालव, क्षुद्रक और यौधेय आदि सिंहरण के नेतृत्व में इस साम्राज्य के अंग हैं। केवल तुम्हीं इससे अलग हो। इस द्वितीय यवन आक्रमण से तुम भारत के द्वार की रक्षा कर लोगे, या पहले ही के समान उत्कोच लेकर—द्वार खोलकर—सब झंझटों से अलग हो जाना चाहते हो ?

आंभीक : आर्य्य, वही-त्रुटि बार-बार न होगी।

चाणक्य : तब साम्राज्य झेलम-तट की रक्षा करेगा। सिंधु-तट का भार तुम्हारे ऊपर रहा।

आंभीक : अकेले मैं यवनों का आक्रमण रोकने में असमर्थ हूँ।

चाणक्य : फिर उपाय क्या है? (नेपथ्य से जयघोष / आंभीक चकित होकर देखने लगता है) क्या है—सुन रहे हो?

आंभीक : समझ में नहीं आया। (नेपथ्य की ओर देखकर) वह एक स्त्री आगे-आगे कुछ गाती हुई आ रही है और उसके साथ बड़ी-सी भीड़ है। (कोलाहल समीप होता है)

चाणक्य : आओ, हम लोग अलग हटकर देखें। (दोनों अलग छिप जाते हैं/ आर्य्य-पताका लिये गाते हुये अलका का भीड़ के साथ प्रवेश)

अलका : तक्षशिला के वीर नागरिको! एक बार, अभी-अभी सम्राट् चंद्रगुप्त ने इसका उद्धार किया था, आर्यावर्त्त—प्यारा देश—ग्रीकों की विजय-लालसा से पुनः पद-दलित होने जा रहा है। तब तुम्हारा शासक तटस्थ रहने का ढोंग करके पुण्यभूमि को परतंत्रता की श्रृंखला पहनाने का दृश्य राजमहल के झरोखों से देखेगा। तुम्हारा राजा कायर है, और तुम?

नागरिक : हम लोग उसका परिणाम देख चुके हैं माँ! हम लोग प्रस्तुत हैं।

अलका : यही तो

(समवेत स्वर से गायन)

> हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
> स्वयंप्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती—
> अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
> प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो—बढ़े चलो!
> असंख्य कीर्त्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
> सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी!
> अराति सैन्य सिंधु में—सुबाड़वाग्नि-से जलो!
> प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो!

(सब का प्रस्थान / चाणक्य और आंभीक बाहर आते हैं)

आंभीक : यह अलका है। तक्षशिला में उत्तेजना फैलाती हुई—यह अलका !

चाणक्य : हाँ, आंभीक ! तुम उसे बंदी बनाओ—मुँह बंद करो !

आंभीक : (कुछ सोचकर) असंभव ! मैं भी साम्राज्य में सम्मिलित होऊँगा !

चाणक्य : यह मैं कैसे कहूँ ? मेरी लक्ष्मी—अलका—ने आर्य्य-गौरव के लिये क्या-क्या कष्ट नहीं उठाये ! वह भी तो इसी वंश की बालिका है ! फिर तुम तो पुरुष हो, तुम्हीं सोचकर देखो।

आंभीक : व्यर्थ का अभिमान अब मुझे देश के कल्याण में बाधक न सिद्ध कर सकेगा। आर्य्य चाणक्य, मैं आर्य्य-साम्राज्य के बाहर नहीं हूँ !

चाणक्य : तब तक्षशिला-दुर्ग पर मगध-सेना अधिकार करेगी। यह तुम सहन करोगे ? (आंभीक सिर नीचा करके विचारता है)

क्षत्रिय कह देना और बात है, करना और !

आंभीक : (आवेश में) हार चुका ही हूँ पराधीन हो ही चुका हूँ। अब स्वदेश के अधीन होने में उससे अधिक कलंक तो मुझे लगेगा नहीं, आर्य्य चाणक्य !

चाणक्य : तो इस गांधार और पंचनद का शासन-सूत्र होगा अलका के हाथ में और तक्षशिला होगी उसकी राजधानी, बोलो—स्वीकार है ?

आंभीक : अलका ?

चाणक्य : हाँ, अलका और सिंहरण इस महाप्रदेश के शासक होंगे।

आंभीक : सब स्वीकार है, ब्राह्मण ! मैं केवल एक बार यवनों के सम्मुख अपना कलंक धोने का अवसर चाहता हूँ। रणक्षेत्र में एक सैनिक होना चाहता हूँ—और कुछ नहीं।

चाणक्य : तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण हो !

(संकेत करता है / सिंहरण और अलका का प्रवेश)

अलका : भाई, आंभीक !

आंभीक : बहन, अलका ! तू छोटी है, पर मेरी श्रद्धा का आधार है। मैं भूल करता था बहन ! तक्षशिला के लिये अलका पर्याप्त है, आंभीक की आवश्यकता न थी।

अलका : भाई क्या कहते हो ?

आंभीक : मैं देशद्रोही हूँ, नीच—अधम हूँ, तूने गांधार के राजवंश का मुख उज्ज्वल किया है—राज्यासन के योग्य तू ही है।

अलका : भाई, अब भी तुम्हारा भ्रम नहीं गया! राज्य किसी का नहीं है! सुशासन का है। जन्मभूमि के भक्तों में आज जागरण है। देखते नहीं, प्राच्य में सूर्योदय हुआ है। स्वयं सम्राट् चंद्रगुप्त तक इस महान् आर्य्य-साम्राज्य के सेवक हैं। स्वतंत्रता के युद्ध में सैनिक और सेनापति का भेद नहीं। जिसकी खड्ग-प्रभा में विजय का आलोक चमकेगा, वही वरेण्य है। उसी की पूजा होगी, भाई! तक्षशिला मेरी नहीं और तुम्हारी भी नहीं, तक्षशिला आर्य्यावर्त्त का एक भू-भाग हैं, वह आर्य्यावर्त्त की होकर ही रहे, इसके लिए मर मिटो! फिर उसके कणों में तुम्हारा ही नाम अंकित होगा। मेरे पिता स्वर्ग में इंद्र से प्रतिस्पर्धा करेंगे। वहाँ की अप्सरायें विजय माला लेकर खड़ी होंगीं, सूर्यमंडल मार्ग बनेगा और उज्ज्वल आलोक से मंडित होकर गांधार का राजकुल अमर हो जायगा।

चाणक्य : साधु—अलके—साधु!

आंभीक : (खड्ग खींचकर) खड्ग की शपथ—मैं कर्त्तव्य से च्युत न होऊँगा!

सिंहरण : (उसे आलिंगन करके) मित्र आंभीक! मनुष्य साधारण धर्मा पशु है, विचारशील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है। (आंभीक का प्रस्थान)
अलका, सम्राट् किस मानसिक वेदना में दिन बिताते होंगे?

अलका : वे वीर हैं मालव, उन्हें विश्वास है कि मेरा कुछ कार्य है। उसकी साधना के लिए प्रकृति, अदृष्ट, दैव या ईश्वर, कुछ-न-कुछ अवलंब जुटा ही देगा! सहायक चाहे आर्य्य चाणक्य हों या मालव!

सिंहरण : अलका, उस प्रचंड पराक्रम को मैं जानता हूँ। परंतु मैं यह भी जानता हूँ कि सम्राट् मनुष्य हैं। अपने से बार-बार सहायता करने के लिए कहने में, मानव-स्वभाव विद्रोह करने लगता है। यह सौहार्द और विश्वास का सुंदर अभिमान है। उस समय मन चाहे अभिनय करता हो संघर्ष से बचने का, किंतु जीवन अपना संग्राम अंध होकर

लड़ता है। कहता है—अपने को बचाऊँगा नहीं, जो मेरे मित्र हों, आवें और अपना प्रमाण दें। (दोनों का प्रस्थान)

(सुवासिनी का प्रवेश)

चाणक्य : सुवासिनी, तुम यहाँ कैसे ?

सुवासिनी : सम्राट् को अभी तक आपका पता नहीं, पिताजी ने इसीलिए मुझे भेजा है। उन्होंने कहा—जिस खेल का आरंभ किया है, उसका पूर्ण और सफल अंत करना चाहिये।

चाणक्य : क्यों करें सुवासिनी, तुम राक्षस के साथ सुखी जीवन बिताओगी, यदि इतनी भी मुझे आशा होती....वह तो यवन-सेनानी है, और तुम मगध की मंत्रि-कन्या ! क्या उससे परिणय कर सकोगी ?

सुवासिनी : (निःश्वास लेकर) राक्षस से ! नहीं—असंभव ! चाणक्य तुम इतने निर्दय हो !

चाणक्य : (हंसकर) सुवासिनी ! वह स्वप्न टूट गया—इस विजन बालुका-सिंधु में एक सुधा की लहर दौड़ पड़ी थी, किंतु तुम्हारे एक भ्रूभंग ने उसे लौटा दिया ! मैं कंगाल हूँ (ठहरकर)सुवासिनी—मैं तुम्हें दंड दूँगा। चाणक्य की नीति में अपराधों के दंड से कोई मुक्त नही।

सुवासिनी : क्षमा करो विष्णुगुप्त !

चाणक्य : असंभव है। तुम्हे राक्षस से ब्याह करना ही होगा, इसी में हमारा तुम्हारा और मगध का कल्याण है !

सुवासिनी : निष्ठुर ! निर्दय !

चाणक्य : (हँसकर) तुम्हें अभिनय भी करना पड़ेगा ! इसमें समस्त संचित कौशल का प्रदर्शन करना होगा। सुवासिनी, तुम्हें बंदिनी बनकर ग्रीक-शिविर में राक्षस और राजकुमारी के पास पहुँचना होगा—राक्षस को देशभक्त बनाने के लिए और राजकुमारी की पूर्वस्मृति में आहुति देने के लिए। कार्नेलिया चंद्रगुप्त से परिणीता होकर सुखी हो सकेगी—कि नहीं, इसकी परीक्षा करनी होगी।

(सुवासिनी सिर पकड़कर बैठ जाती है)

(उसके सिर पर हाथ रखकर) सुवासिनी ! तुम्हारा प्रणय, स्त्री और

पुरुष के रूप में केवल राक्षस में अंकुरित हुआ, और शैशव का वह सब—केवल हृदय की स्निग्धता थी। आज इसी कारण से राक्षस का प्रणय द्वेष में बदल रहा है, परंतु काल पाकर वह अंकुर हरा-भरा और सफल हो सकता है! चाणक्य यह नहीं मानता है कि कुछ असंभव है। तुम राक्षस से प्रेम करके सुखी हो सकती हो, क्रमशः उस प्रेम का सच्चा विकास हो सकता है। और मैं-अभ्यास करके तुमसे उदासीन हो सकता हूँ—यही मेरे लिए अच्छा होगा। मानव-हृदय में वह भाव-सृष्टि तो हुआ ही करती है। यही हृदय का रहस्य है, तब हम लोग जिस सृष्टि में स्वतंत्र हों, उसमें परवशता क्यों मानें? मैं क्रूर हूं, केवल वर्त्तमान के लिए, भविष्य के सुख, और शांति के लिए, परिणाम के लिए नहीं। श्रेय के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिये, सुवासिनी! जाओ!

सुवासिनी : (दीनता से चाणक्य का मुँह देखती है) तो विष्णुगुप्त, तुम इतना बड़ा त्याग करोगे! अपने हाथों बताया हुआ, इतने बड़े साम्राज्य का शासन हृदय की आकांक्षा के साथ अपने प्रतिद्वंद्वी को सौंप दोगे! ओर सो भी मेरे लिए।

चाणक्य : (घबड़ाकर) मैं बड़ा विलंब कर रहा हूं! सुवासिनी, आर्य्य दांड्यायन के आश्रम में पहुँचने के लिए मैं पथ भूल गया हूँ! मेघ के समान मुक्त वर्षा-सा जीवन-दान, सूर्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना—सागर के समान कामना-नदियों को पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना, यही तो ब्राह्मण का आदर्श है। मुझे चंद्रगुप्त को मेघमुक्त चंद्र देखकर इस रंगमंच से हट जाना है!

सुवासिनी : महापुरुष! मैं नमस्कार करती हूँ। विष्णुगुप्त तुम्हारी बहन तुमसे आशीर्वाद की भिखारिन है। (चरण पकड़ती है)

चाणक्य : सुखी रहो। (सजल नेत्र से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए प्रस्थान)

७

(कपिशा में एलेक्जेंड्रिया का राज-मंदिर/कार्नेलिया और उसकी सखी का प्रवेश)

कार्नेलिया : बहुत दिन हुए देखा था ! वही भारतवर्ष ! वही निर्मल ज्योति का देश, पवित्र भूमि, अब हत्या और लूट से बीभत्स बनायी जायगी—ग्रीक-सैनिक इस शस्यश्यामला पृथ्वी को रक्तरंजित बनावेंगे ! पिता अपने साम्राज्य से संतुष्ट नहीं, आशा उन्हें दौड़ावेगी। पिशाची की छलना में पड़कर लाखों प्राणियों का नाश होगा। और, सुना है यह युद्ध होगा—चंद्रगुप्त से !

सखी : सम्राट् तो आज स्कंधावार में जाने वाले हैं (राक्षस का प्रवेश)

राक्षस : आयुष्मती ! मैं आ गया।

कार्नेलिया : नमस्कार। तुम्हारे देश में तो सुना है कि ब्राह्मण जाति बड़ी तपस्वी और त्यागी है।

राक्षस : हाँ कल्याणी वह मेरे पूर्वजों का गौरव हैं, किंतु हम लोग तो बौद्ध हैं।

कार्नेलिया : और तुम उसके ध्वंसावशेष हो। मेरे यहाँ ऐसे ही लोगों को देश-द्रोही कहते हैं। तुम्हारे यहाँ इसे क्या कहते हैं ?

राक्षस : राजकुमारी ! मैं कृतघ्न नहीं, मेरे देश में कृतज्ञता पुरुषत्व का चिन्ह है। जिसके अन्न से जीवन-निर्वाह होता है, उसका कल्याण—

कार्नेलिया : कृतज्ञता पाश है, मनुष्य की दुर्बलताओं के फंदे उसे और भी दृढ़ करते हैं परंतु जिस देश ने तुम्हारा पालन-पोषण करके पूर्व उपकारों का बोझ तुम्हारे ऊपर डाला है, उसे विस्मृत करके क्या तुम कृतघ्न नहीं हो रहे हो ? सुकरात का तर्क तुमने पढ़ा है।

राक्षस : तर्क और राजनीति में भेद है, मैं प्रतिशोध चाहता हूँ ! राजकुमारी कर्णिक ने कहा—

कार्नेलिया : कि सर्वनाश कर दो। यदि ऐसी है, तो मैं तुम्हारी राजनीति नहीं पढ़ना चाहती।

राक्षस : पाठ थोड़ा अवशिष्ट है। उसे भी समाप्त कर लीजिये, आपके पिता की आज्ञा है।

कार्नेलिया : मैं तुम्हारे उशना और कणिक से ऊब गई हूँ, जाओ। (राक्षस का प्रस्थान) एलिस! इन दिनों जो ब्राह्मण मुझे रामायण पढ़ाता था, वह कहाँ गया? उसने व्याकरण पर अपनी नयी टिप्पणी प्रस्तुत की है। वह कितना सरल और विद्वान् है।

एलिस : वह चला गया राजकुमारी।

कार्नेलिया : बड़ा ही निर्लोभी सच्चा ब्राह्मण था (सिल्यूकस का प्रवेश)—अरे पिताजी।

सिल्यूकस : हाँ बेटी! अब तुमने अध्ययन बंद कर दिया ऐसा क्यों? अभी वह राक्षस मुझसे कह रहा था।

कार्नेलिया : पिताजी! उसके देश ने उसका नाम कुछ समझ कर ही रक्खा है—राक्षस! मैं उससे डरती हूँ।

सिल्यूकस : बड़ा विद्वान् है बेटी! मैं उसे भारतीय प्रदेश का क्षत्रप बनाऊँगा।

कार्नेलिया : पिताजी! वह पाप की मलिन छाया है। उसकी भवों में कितना अंधकार है, आप देखते नहीं। उससे अलग रहिये। विश्राम लीजिये। विजयों की प्रवंचना में अपने को न हारिये। महत्त्वाकांक्षा के दाँव पर मनुष्यता सदैव हारी है। डिमास्थनीज ने....

सिल्यूकस : मुझे दार्शनिकों से तो विरक्ति हो गयी है। क्या ही अच्छा होता कि ग्रीस में दार्शनिक न उत्पन्न होकर केवल योद्धा ही होते।

कार्नेलिया : सो तो होता ही है। मेरे पिता किससे कम वीर हैं। मेरे विजेता पिता। मैं भूल करती हूँ, क्षमा कीजिये।

सिल्यूकस : यही तो मेरी बेटी। ग्रीक-रक्त वीरता के परमाणु से संगठित है। तुम चलोगी युद्ध देखने? सिंधु-तट के स्कंधावार में रहना।

कार्नेलिया : चलूँगी!

सिल्यूकस : अच्छा तो प्रस्तुत रहना। आंभीक—तक्षशिला का राजा—इस युद्ध में तटस्थ रहेगा, आज उसका पत्र आया है। और राक्षस कहता है कि चाणक्य—चंद्रगुप्त का मंत्री—उससे क्रुद्ध होकर

कहीं चला गया है। पंचनद में चंद्रगुप्त का कोई सहायक नहीं। बेटी सिकंदर से बड़ा साम्राज्य–उससे बड़ी विजय ! कितना उज्ज्वल भविष्य है।

कार्नेलिया : हाँ पिता जी।

सिल्यूकस : हाँ पिताजी ! उल्लास की एक रेखा भी नहीं—इतनी उदासी ! तू पढ़ना छोड़ दे ! मैं कहता हूँ कि तू दार्शनिक होती जा रही है—ग्रीक—रक्त !

कार्नेलिया : वही तो कह रही हूँ। आप ही तो कभी पढ़ने के लिए कहते हैं, कभी छोड़ने के लिए।

सिल्यूकस : तब ठीक है, मैं ही भूल रहा हूँ। (प्रस्थान)

८

(पथ में चंद्रगुप्त और सैनिक)

चंद्रगुप्त : पंचनद का नायक कहाँ है ?

एक सैनिक : वह आ रहे हैं, देव !

नायक : (प्रवेश करके) जय हो देव !

चंद्रगुप्त : सिंहरण कहाँ ? (नायक विनम्र होकर पत्र देता है, पत्र पढ़कर उसे फाड़ते हुए) हूं ! सिंहरण इसी प्रतीक्षा में हैं कि कोई बलाधिकृत जाय तो अपना अधिकार सौंप दें ! नायक ! तुम खड्ग पकड़ सकते हो, और उसे हाथ में लिये सत्य से विचलित तो नहीं हो सकते ? बोलो, चंद्रगुप्त के नाम से प्राण दे सकते हो ? मैंने प्राण देने वाले वीरों को देखा है। चंद्रगुप्त युद्ध करना जानता है। और विश्वास रक्खो, उसके नाम का जयघोष विजय-लक्ष्मी का मंगल-गान है ! आज से मैं ही बलाधिकृत हूं, मैं आज सम्राट् नहीं, सैनिक हूँ ! चिंता क्या ? सिंहरण और गुरुदेव न साथ दें, क्या डर ! सैनिको ! सुन लो, आज से मैं केवल सेनापति हूँ, और कुछ नहीं ! जाओ यह लो मुद्रा और सिंहरण

को छुट्टी दो ! कह देना कि तुम दूर खड़े होकर देख लो सिंहरण ! चंद्रगुप्त कायर नहीं है—' जाओ जाओ (नायक जाने लगता है) ठहरो आंभीक की क्या लीला है ?

नायक : आंभीक ने यवनों से कहा कि ग्रीक-सेना मेरे राज्य से आ सकती है, परंतु युद्ध के लिये सैनिक न दूंगा, क्योंकि मैं उन पर स्वयं विश्वास नहीं करता ।

चंद्रगुप्त : और वह कह ही क्या सकता था ! कायर ! अच्छा जाओ, देखो—वितस्ता के उस पार हम लोगों को शीघ्र पहुँचना चाहिये । तुम सैन्य लेकर मुझसे वहीं मिलो । (नायकका प्रस्थान)

एक सैनिक : मुझे क्या आज्ञा है, मगध जाना होगा ?

चंद्रगुप्त : आर्य्य शकटार को पत्र देना, और सब समाचार सुना देना मैंने लिख तो दिया है, परंतु तुम भी उनसे इतना कह देना कि इस समय मुझे सैनिक और शस्त्र तथा अन्न चाहिये । देश में डौंड़ी फेर दें कि आर्य्यावर्त्त में शस्त्र ग्रहण करने में जो समर्थ हैं—सैनिक हैं और जितनी संपत्ति है—युद्धविभाग की है—जाओ । (सैनिक का प्रस्थान)

दूसरा सैनिक : शिविर आज कहाँ रहेगा देव ?

चंद्रगुप्त : अश्व की पीठ पर सैनिक ! कुछ खिला दो, और अश्व बदलो । एक क्षण विश्राम नहीं । हाँ ठहरो, सब सेना-निवेशों में आज्ञापत्र भेज दिये गये ?

दूसरा सैनिक : हाँ देव !

चंद्रगुप्त : तो अब मैं बिजली से भी शीघ्र पहुँचना चाहता हूँ । चलो, शीघ्र प्रस्तुत हो ! (सैनिकों का प्रस्थान/आकाश की ओर देखकर) अदृष्ट ! खेल न करना ! चंद्रगुप्त मरण से अधिक भयानक को आलिंगन करने के लिये प्रस्तुत है ! विजय—मेरे चिर सहचर ! (हँसते हुए प्रस्थान)

१

(ग्रीक-शिविर)

कार्नेलिया : एलिस ! यहाँ आने पर जैसे मन उदास हो गया है। इस संध्या के दृश्य ने मेरी तन्मयता में एक स्मृति की सूचना दी है ! सरला संध्या पक्षियों के नाद से शांति को बुलाने लगी है। देखते-देखते एक-एक करके दो-चार नक्षत्र उदय होने लगे। जैसे प्रकृति, अपनी सृष्टि की रक्षा, हीरों की कील से जड़ी हुई काली ढाल लेकर कर रही है और पवन किसी मधुर कथा का भार लेकर मचलता हुआ जा रहा है—यह कहाँ जायगा एलिस !

एलिस : अपने प्रिय के पास !

कार्नेलिया : दुर ! तुझे तो प्रेम-ही-प्रेम सूझता है। (दासी का प्रवेश)

दासी : राजकुमारी ! एक स्त्री बंदी बनकर आयी है।

कार्नेलिया : (आश्चर्य से) तो उसे पिताजी ने मेरे पास भेजा होगा, उसे शीघ्र ले आओ ! (दासी का प्रस्थान/सुवासिनी सहित पुनः प्रवेश) तुम्हारा नाम क्या है ?

सुवासिनी : मेरा नाम सुवासिनी है। मैं किसी को खोजने जा रही थी, सहसा बंदी कर ली गयी। वह भी कदाचित् आप के यहाँ बंदी हो !

कार्नेलिया : उसका नाम ?

सुवासिनी : राक्षस।

कार्नेलिया : ओहो, तुमने उससे ब्याह कर लिया है क्या ? तब तो तुम सचमुच अभागिनी हो।

सुवासिनी : (चौंककर) ऐसा क्यों ? अभी तो ब्याह होने वाला है, क्या आप उसके संबंध में कुछ जानती हैं।

कार्नेलिया : बैठो, बताओ, तुम बंदी बनकर रहना चाहती हो या मेरी सखी ? झटपट बोलो !

सुवासिनी : बंदी बनकर तो आयी हूँ, यदि सखी हो जाऊँ तो अहोभाग्य !

कार्नेलिया : प्रतिज्ञा करनी होगी कि मेरी अनुमति के बिना तुम ब्याह न करोगी।

सुवासिनी : स्वीकार है।

कार्नेलिया : अच्छा, अपनी परीक्षा दो, बताओ तुम विवाहिता स्त्रियों को क्या समझती हो ?

सुवासिनी : धनियों के प्रमोद का कटा-छटा हुआ शोभा-वृक्ष कोई डाली उल्लास से आगे बढ़ी, कुतर दी गयी ! माली के मन से सँवरे हुए गोल-मटोल खड़े रहो !

कार्नेलिया : वाह, ठीक कहा। यही तो मैं सोचती थी। क्यों एलिस ! अच्छा यौवन और प्रेम को क्या समझती हो ?

सुवासिनी : अकस्मात् जीवन-कानन में, एक राका-रजनी की छाया में छिप कर मधुर वसंत घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौंदर्य का कोकिल—कौन ? कहकर सबको रोकने-टोकने लगता है, पुकारने लगता है। राजकुमारी ! फिर उसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू भरी स्मृतियाँ मकरंद सी उसमें छिपी रहती हैं।

कार्नेलिया : (उसे गले लगाकर) आह सखी ! तुम तो कवि हो तुम प्रेम करना चाहती हो और जानती हो उसका रहस्य। तुमसे हमारी पटेगी ! एलिस ! जा, पिताजी से कह दे, कि मैंने उस स्त्री को अपनी सखी बना लिया। (एलिस का प्रस्थान)

सुवासिनी : राजकुमारी ! प्रेम में स्मृति का ही सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है। आश्चर्य तो यह है कि प्रत्येक कुमारी के हृदय में वह निवास करती है। पर उसे सब प्रत्यक्ष नहीं कर सकतीं, सबको उसका मार्मिक अनुभव नहीं होता।

कार्नेलिया : तुम क्या कहती हो ?

सुवासिनी : वह स्त्री-जीवन का सत्य है। जो कहती है कि मैं नहीं जानती—वह दूसरे को धोखा देती है, अपने को भी प्रवंचित करती है ! धधकते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रखकर उसी कंपन में स्वर मिला कर

कामदेव गाता है और राजकुमारी ! वही काम-संगीत की तान सौंदर्य्य की रंगीन लहर बन कर, युवतियों में मुख पर लज्जा और स्वास्थकी लाली चढ़ाया करती है।

कार्नेलिया : सखी ! मदिरा की प्याली में तू स्वप्न-सी लहरों को मत आंदोलित कर। स्मृति बड़ी निष्ठुर है। यदि प्रेम ही जीवन का सत्य है—तो संसार ज्वालामुखी है। (सिल्यूकस का प्रवेश)

सिल्यूकस : तो बेटी, तुमने इसे अपने पास रख ही लिया ! मन बहलेगा, अच्छा तो है। मैं भी इसी समय जा रहा हूँ, कल ही आक्रमण होगा। देखो, सावधान रहना !

कार्नेलिया : किस पर आक्रमण होगा ! पिताजी ?

सिल्यूकस : चंद्रगुप्त की सेना पर। वितस्ता के इस पार सेना आ पहुँची है, अब युद्ध में विलंब नहीं।

कार्नेलिया : पिताजी, उसी चंद्रगुप्त से युद्ध होगा, जिसके लिए उस साधु ने भविष्यवाणी की थी ? वही तो भारत का राजा हुआ न ?

सिल्यूकस : हाँ बेटी, वही चंद्रगुप्त।

कार्नेलिया : पिताजी, आपने ही मृत्यु-मुख से उसका उद्धार किया था और उसी ने आपके प्राणों की रक्षा की थी ?

सिल्यूकस : हाँ, वही तो !

कार्नेलिया : और उसी ने आपकी कन्या के सम्मान की रक्षा की थी—फिलिप्स का वह अशिष्ट आचरण पिताजी !

सिल्यूकस : तभी तो बेटी, मैंने साइबर्टियस को दूत बनाकर समझाने के लिये भेजा था। किंतु उसने उत्तर दिया कि मैं सिल्यूकस का कृतज्ञ हूँ—तो भी क्षत्रिय हूँ, रणदान जो भी मांगेगा, उसे दूँगा। युद्ध होना अनिवार्य है।

कार्नेलिया : तब मैं कुछ नहीं कहती।

सिल्यूकस : (प्यार से) तू रूठ गयी बेटी। भला अपनी कन्या के सम्मान की रक्षा करने वाले का मैं वध करूँगा ?

सुवासिनी : फिलिप्स को द्वंद्व-युद्ध में सम्राट् चंद्रगुप्त ने मार डाला। सुना था,

इन लोगों का कोई व्यक्तिगत विरोध....

सिल्यूकस : चुप रहो तुम !—(कार्नेलिया से) बेटी, मैं चंद्रगुप्त को क्षत्रप बना दूँगा, बदला चुक जायगा। मैं हत्यारा नहीं—विजेता सिल्यूकस हूँ। (प्रस्थान)

कार्नेलिया : (दीर्घ निःश्वास लेकर) रात अधिक हो गयी, चलो सो रहें ! सुवासिनी, तुम कुछ गाना जानती हो ?

सुवासिनी : जानती थी भूल गयी हूँ। कोई वाद्य यंत्र तो आप न बजाती होंगी ?—(आकाश की ओर देखकर) रजनी कितने रहस्यों की रानी है, राजकुमारी !

कार्नेलिया : रजनी ! मेरी स्वप्न-सहचरी ! (सुवासिनी गाने लगती है)

सखे ! वह प्रेममयी रजनी।
आखों में स्वप्न बनी, सखे ! वह प्रेममयी रजनी।
कोमल द्रुमदल निष्कंप रहे,
ठिठका-सा चंद्र खड़ा
माधव सुमनों में गूँथ-रहा,
तारों की किरन-अनी। सखे ! वह प्रेममयी रजनी।
नयनों में मदिर विलास लिये,
उज्ज्वल आलोक खिला।
हँसती-सी सुरभि सुधार रही,
अलकों की मृदुल अनी। सखे ! वह प्रेममयी रजनी।
मधु-मंदिर-सा यह विश्व बना,
मीठी झन्कार उठी !
केवल तुमको थी देख रही—
स्मृतियों की भीड़ घनी। सखे ! वह प्रेममयी रजनी।

१०

(युद्ध-क्षेत्र के समीप चाणक्य और सिंहरण)

चाणक्य : तो युद्ध आरंभ हो गया ?

सिंहरण : हाँ आर्य्य ! प्रचंड विक्रम से सम्राट् ने आक्रमण किया है । यवन-सेना थर्रा उठी है । आज के युद्ध में प्राणों को तुच्छ गिनकर वे भीम पराक्रम का परिचय दे रहे हैं । गुरुदेव ! यदि कोई दुर्घटना हुई तो ! आज्ञा दीजिये, अब मैं अपने को नहीं रोक सकता । तक्षशिला और मालवों की चुनी हुई सेना प्रस्तुत है, किस समय काम आवेगी ?

चाणक्य : जब चंद्रगुप्त की नासीर सेना का बल-क्षय होने लगे और सिंधु के इस पार की यवनों की समस्त सेना युद्ध में सम्मिलित हो जाय, उसी समय आंभीक आक्रमण करे । और तुम—चंद्रगुप्त का स्थान ग्रहण करो । दुर्ग की सेना सेतु की रक्षा करेगी, साथ ही चंद्रगुप्त को सिंधु के उस पार जाना होगा—यवन-स्कंधावर पर आक्रमण करने, समझे ? (सिंहरण का प्रस्थान / चर का प्रवेश)

चर : क्या आज्ञा है ?

चाणक्य : जब चंद्रगुप्त की सेना सिंधु के उस पार पहुँच जाय तब तुम्हें ग्रीकों के प्रधान शिविर की ओर उसे आक्रमण को प्रेरित करना होगा । चंद्रगुप्त के पराक्रम की अग्नि में घी डालने का काम तुम्हारा है ।

चर : जैसी आज्ञा । (प्रस्थान/दूसरे चर का प्रवेश)

चर : देव राक्षस प्रधान शिविर में हैं ।

चाणक्य : जाओ, ठीक है । सुवासिनी से मिलते रहो । (दोनों का प्रस्थान)
(एक ओर से सिल्यूकस, दूसरी ओर से चंद्रगुप्त का प्रवेश)

सिल्यूकस : चंद्रगुप्त, तुम्हें राजपद की बधाई देता हूं ।

चंद्रगुप्त : स्वागत सिल्यूकस ! अतिथि की-सी तुम्हारी अभ्यर्थना करने में हम विशेष सुखी होते; परंतु क्षात्र-धर्म बड़ा कठोर है । आर्य्य कृतघ्न

नहीं होते; प्रमाण यही है कि मैं अनुरोध करता हूं—यवनसेना बिना युद्ध के लौट जाय ।

सिल्यूकस : वाह ! तुम वीर हो, परंतु मुझे तो भारत-विजय करना ही होगा । फिर चाहे तुम्हीं को क्षत्रप बना दूँ ।

चंद्रगुप्त : यही तो असंभव है—तो फिर युद्ध हो ! (रण-वाद्य/युद्ध/लड़ते हुए उन लोगों का प्रस्थान/आंभीक का ससैन्य प्रवेश)

आंभीक : मगध-सेना प्रत्यावर्त्तन करती है । ओह, कैसा भीषण युद्ध है । अभी ठहरें ? अरे, देखो कैसा परिवर्तन !—यवन-सेना हट रही है, लो—वह भगी । (चर का प्रवेश)

चर : आक्रमण कीजिये—जिसमें सिंधु तक यह सेना लौट न सके । आर्य्य चाणक्य ने कहा है, युद्ध अवरोधात्मक होना चाहिये । (चर का प्रस्थान/रण-वाद्य बजते हैं/लौटती हुई यवन-सेना का दूसरी ओर से प्रवेश)

सिल्यूकस : कौन ? प्रवंचक आंभीक ! कायर !

आंभीक : हाँ सिल्यूकस—आंभीक सदा प्रवंचक रहा, परंतु यह प्रवंचना कुछ महत्त्व रखती है—सावधान !

(युद्ध/सिल्यूकस को घायल करते हुए आंभीक की मृत्यु/यवनसेना का प्रस्थान/सैनिकों के साथ सिंहरण का प्रवेश)

सब : 'सम्राट् चंद्रगुप्त की जय !'

चंद्रगुप्त : (प्रवेश करते) भाई सिंहरण, बड़े अवसर पर आये !

सिंहरण : हाँ सम्राट् ! और समय चाहे मालव न मिलें, पर प्राण देने का महोत्सव-पर्व नहीं छोड़ सकते । आर्य्य चाणक्य ने कहा कि मालव और तक्षशिला की सेना प्रस्तुत मिलेगी । आप ग्रीकों के प्रधान शिविर का अवरोध कीजिये !

चंद्रगुप्त : गुरुदेव ने यहाँ भी मेरा ध्यान नहीं छोड़ा ! मैं उनका अपराधी हूँ सिंहरण !

सिंहरण : मैं यहाँ देख लूँगा, आप शीघ्र जाइये, समय नहीं है ! मैं भी आता हूँ ।

सेना : महाबलाधिकृत सिंहरण की जय ! (चंद्रगुप्त का प्रस्थान / दूसरी ओर से सिंहरण आदि का प्रस्थान)

११

(शिविर का एक अंश/चिंतित भाव से राक्षस का प्रवेश)

राक्षस : क्या होगा ? आग लग गयी है, बुझ न सकेगी ? तो मैं कहाँ रहूँगा ? क्या हम सब ओर से गये ?

सुवासिनी : (प्रवेश करके) सब ओर से गये राक्षस ! समय रहते तुम सचेत न हुए !

राक्षस : तुम कैसे सुवासिनी !

सुवासिनी : तुम्हें खोजते हुए बंदी बनाई गयी। अब उपाय क्या है ? चलोगे ?

राक्षस : कहाँ सुवासिनी ? इधर खाईं, उधर पर्वत ! कहाँ चलूँ ?

सुवासिनी : मैं इस युद्ध-विप्लव से घबरा रही हूँ। वह देखो, रण-वाद्य बज रहे हैं ! यह स्थान भी सुरक्षित नहीं—मुझे बचाओ राक्षस ! (भय का अभिनय करती है)

राक्षस : (उसे आश्वासन देते हुए) मेरा कर्त्तव्य मुझे पुकार रहा है। प्रिये, मैं रणक्षेत्र से भाग नहीं सकता, चंद्रगुप्त के हाथों प्राण देने में ही कल्याण है ! किंतु तुमको····(इधर-उधर देखता है/रण-कोलाहल)

सुवासिनी : बचाओ !

राक्षस : (निःश्वास लेकर) अदृष्ट ! दैव प्रतिकूल है—चलो सुवासिनी ! (दोनों का प्रस्थान/एकाकिनी कार्नेलिया का प्रवेश/रणशब्द)

कार्नेलिया : यह क्या ! पराजय न हुई होती तो शिविर पर आक्रमण कैसे होता—(विचार करके) चिंता नहीं, ग्रीक बालिका भी प्राण देना जानती है। आत्म-सम्मान—ग्रीक का आत्म-सम्मान जिये ! (छुरी निकालती है)—तो अंतिम समय एक बार नाम लेने में कोई अपराध है ? चंद्रगुप्त ! (विजयी चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चंद्रगुप्त : यह क्या ! (छुरी ले लेता है) राजकुमारी !

कार्नेलिया : निर्दयी हो चंद्रगुप्त ! मेरे बूढ़े पिता की हत्या कर चुके होंगे ! सम्राट् हो जाने पर आँखें रक्त देखने की प्यासी हो जाती हैं न !

चंद्रगुप्त : राजकुमारी ! तुम्हारे पिता आ रहे हैं ।

(सैनिकों के बीच में सिल्यूकस का प्रवेश)

कार्नेलिया : (हाथों से मुँह छिपाकर) आह ! विजेता सिल्यूकस को भी चंद्रगुप्त के हाथों से पराजित होना पड़ा ।

सिल्यूकस : हाँ बेटी !

चंद्रगुप्त : यवन सम्राट् ! आर्य्य कृतघ्न नहीं होते । आपको सुरक्षित स्थान पर पहुँचना देना ही मेरा कर्त्तव्य था । सिंधु के इस पार अपने सेना-निवेश में आप हैं, मेरे बंदी नहीं ! मैं जाता हूँ ।

सिल्यूकस : इतनी महत्ता !

चंद्रगुप्त : राजकुमारी ! पिताजी को विश्राम की आवश्यकता है । फिर हम लोग मित्रों के समान मिल सकते हैं ।

(चंद्रगुप्त का सैनिकों के साथ प्रस्थान / कार्नेलिया उसे देखती रहती है)

१२

(पथ में साइबर्टियस और मेगास्थनीज)

साइबर्टियस : उसने तो हम लोगों को मुक्त कर दिया था, फिर अवरोध क्यों ?

मेगास्थनीज : समस्त ग्रीक शिविर बंदी है ! यह उसके मंत्री चाणक्य की चाल है । मालव और तक्षशिला की सेना हिरात के पथ में खड़ी हैं, लौटना असंभव है ।

साइबर्टियस : क्या चाणक्य ! वह तो चंद्रगुप्त से क्रुद्ध होकर कहीं चला गया था न ? राक्षस ने यही कहा था, क्या वह झूठा था ?

मेगास्थनीज : सब षड्यंत्र में मिले थे । शिविर को अरक्षित अवस्था में छोड़कर कहे बिना सुवासिनी को लेकर खिसक गया । अभी भी न समझे ! इधर चाणक्य ने आज मुझसे यह भी कहा है कि मुझे ऑंटिगोनस के आक्रमण की भी सूचना मिली है । (सिल्यूकस का प्रवेश)

सिल्यूकस : क्या ? ऑंटिगोनस !

मेगास्थनीज : हाँ सम्राट्, इस मर्म से अवगत होकर भारतीय कुछ नियमों पर ही मैत्री किया चाहते हैं ।

सिल्यूकस : तो क्या ग्रीक इतने कायर हैं ! युद्ध होगा साइबर्टियस ! हम सबको मरना होगा ।

मेगास्थनीज : (पत्र देकर) इसे पढ़ लीजिये, सीरिया पर ऑंटिगोनस की चढ़ाई समीप है । आप को उस पूर्व-संचित और सुरक्षित साम्राज्य को न गँवा देना चाहिये ।

सिल्यूकस : (पत्र पढ़कर विषाद से) तो वे चाहते क्या हैं ?

मेगास्थनीज : सम्राट् ! संधि करने के लिए तो चंद्रगुप्त प्रस्तुत है, परंतु नियम बड़े कड़े हैं । सिंधु के पश्चिम के प्रदेश—आर्य्यावर्त्त की नैसर्गिक सीमा—निषध-पर्वत तक वे लोग चाहते हैं । और भी····

सिल्यूकस : चुप क्यों हो गये ? कहो कहो, चाहे वे शब्द कितने ही कटु हों मैं उन्हें सुनना चाहता हूँ ।

मेगास्थनीज : चाणक्य ने एक और भी अड़ंगा लगाया है । उसने कहा है, सिकंदर के साम्राज्य में जो भावी विप्लव हैं, वह मुझे भलीभाँति अवगत है । पश्चिम का भविष्य रक्त-रंजित है, इसलिए यदि पूर्व में स्थायी शांति चाहते हों तो ग्रीक-सम्राट् चंद्रगुप्त को अपना बंधु बना लें ।

सिल्यूकस : सो कैसे ?

मेगास्थनीज : राजकुमारी कार्नेलिया का सम्राट् चंद्रगुप्त से परिणय करके ।

सिल्यूकस : अधम—ग्रीक ! तुम इतने पतित हो !

मेगास्थनीज : क्षमा हो सम्राट् ! वह ब्राह्मण कहता है कि आर्य्यावर्त्त की साम्राज्ञी भी तो कार्नेलिया ही होगी ।

साइबर्टियस : परंतु राजकुमारी की सम्मति चाहिये ।

सिल्यूकस : असंभव ! घोर अपमानजनक !

मेगास्थनीज : मैं क्षमा किया जाऊँ तो—सम्राट् ! राजकुमारी का चंद्रगुप्त से पूर्व परिचय भी है । कौन कह सकता है कि प्रणय अपनी अदृश्य

सुनहली रश्मियों से एक-दूसरे को न खींच चुका हो ! सम्राट् सिकंदर के अभियान का स्मरण कीजिये—मैं उस घटना को भूल नहीं गया हूं ।

सिल्यूकस : मेगास्थनीज—मैं यह जानता हूं। कार्नेलिया ने इस युद्ध में जितनी बाधायें उपस्थित कीं, वे सब—साक्षी हैं कि उसके मन में कोई भाव है, पूर्व-स्मृति है, फिर भी—फिर भी न जानें क्यों ! वह देखो, आ रही है ! तुम लोग हट तो जाओ ! (साइबर्टियस और मेगास्थनीज का प्रस्थान और कार्नेलिया का प्रवेश)

कार्नेलिया : पिताजी !

सिल्यूकस : बेटी कार्नो !

कार्नेलिया : आप चिंतित क्यों हैं ?

सिल्यूकस : चंद्रगुप्त को दंड कैसे दूं ? इसी की चिंता है ।

कार्नेलिया : क्यों पिताजी, चंद्रगुप्त ने क्या अपराध किया है ?

सिल्यूकस : हैं ! अभी बताना होगा कार्नेलिया ! भयानक युद्ध होगा, इसमें चाहे दोनों का सर्वनाश हो जाय !

कार्नेलिया : युद्ध तो हो चुका ! अब क्या मेरी प्रार्थना आप सुनेंगे पिताजी ! विश्राम लीजिये ! चंद्रगुप्त का तो कोई अपराध नहीं, क्षमा कीजिये पिताजी ! (घुटने टेकती है)

सिल्यूकस : (बनावटी क्रोध से) देखता हूं कि पिता को पराजित करने वाले पर तुम्हारी असीम अनुकंपा है ।

कार्नेलिया : (रोती हुई) मैं स्वयं पराजित हूँ । मैंने अपराध किया है पिताजी ! चलिये, इस भारत की सीमा से दूर चले चलिये, नहीं तो मैं पागल हो जाउँगी ।

सिल्यूकस : (उसे गले लगाकर) तब मैं जान गया कार्नो, तू सुखी हो बेटी ! तुझे भारत की सीमा से दूर न जाना होगा—तू भारत की साम्राज्ञी होगी ।

कार्नेलिया : पिता जी ! (प्रस्थान)

१३

(दांड्यायन का तपोवन / ध्यानस्थ चाणक्य / भयभीत भाव से राक्षस और सुवासिनी का प्रवेश)

राक्षस : चारों ओर आर्य्य-सेना ! कहीं से निकलने का उपाय नहीं। क्या किया जाय सुवासिनी !

सुवासिनी : यह तपोवन है—यहीं हम लोग छिप रहेंगे।

राक्षस : मैं देश-द्रोही—ब्राह्मण-द्रोही—बौद्ध ! हृदय काँप रहा है। क्या होगा ?

सुवासिनी : आर्य्यों के तपोवन इन राग-द्वेषों से परे हैं।

राक्षस : तो चलो वहीं (सामने देखकर) सुवासिनी। वह देखो—वह कौन ?

सुवासिनी : (देखकर) आर्य्य चाणक्य !

राक्षस : आर्य्य-साम्राज्य का महामंत्री इस तपोवन में !

सुवासिनी : यही तो ब्राह्मण की महत्ता है राक्षस ! यों तो मूर्खों की निवृत्ति भी प्रवृत्तिमूलक होती है। देखो, यह सूर्य-रश्मियों का-सा रस-ग्रहण कितना निष्काम, कितना निवृत्तिपूर्ण है !

राक्षस : सचमुच मेरा भ्रम था सुवासिनी ! मेरी इच्छा होती है कि चलकर इस महात्मा के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लूँ और क्षमा माँग लूँ !

सुवासिनी : बड़ी अच्छी बात सोची तुमने—देखो ! (दोनों छिप जाते हैं)

चाणक्य : (आँख खोलता हुआ) कितना गौरवमय आज का अरुणोदय है। भगवान् सविता, तुम्हारा आलोक, जगत का मंगल करे। मैं आज जैसे निष्काम हो रहा हूं। विदित होता है कि आज तक जो कुछ किया, वह सब भ्रम था, मुख्य वस्तु आज सामने आई। आज मुझे अपने अंतर्निहित ब्राह्मणत्व की उपलब्धि हो रही है। चैतन्य-सागर निस्तरंग है और ज्ञान-ज्योति निर्मल है। तो क्या मेरा कर्म-कुलाल-चक्र अपना निर्मित भांड उतार कर धर चुका ? ठीक तो, प्रभात पवन के साथ सब की सुख-कामना शांति का आलिंगन कर रही है। देव ! आज मैं धन्य हूं। (दूसरी ओर झाड़ी में मौर्य्य)

मौर्य्य : ढोंग है। रक्त और प्रतिशोध, क्रूरता और मृत्यु का खेल देखते ही जीवन बीता, अब क्या मैं इस सरल पथ पर चल चकूँगा ? यह ब्राह्मण आँखें मूँदने-खोलने का अभिनय भले ही करे, पर मैं ! असंभव है, अरे जैसे मेरा रक्त खौलने लगा ! हृदय में भयानक चेतना, एक अवज्ञा का अट्टहास, प्रतिहिंसा जैसे नाचने लगी ! यह एक साधारण मनुष्य, दुर्बल कंकाल, विश्व के समूचे शस्त्रबल को तिरस्कृत किये बैठा है ! रख दूँ गले पर खड्ग, फिर देखूँ तो यह प्राणों की भिक्षा माँगता है या नहीं ! सम्राट् चंद्रगुप्त के पिता की अवज्ञा ! नहीं-नहीं ब्रह्महत्या होगी—मेरा प्रतिशोध और चंद्रगुप्त का निष्कंटक राज्य ! (छुरी निकाल कर चाणक्य को मारना चाहता है / सुवासिनी दौड़कर उसका हाथ पकड़ लेती है / दूसरी ओर से अलका, सिंहरण, अपनी माता के साथ चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चंद्रगुप्त : (आश्चर्य और क्रोध से), यह क्या पिताजी ! सुवासिनी ! बोलो, बात क्या हैं ?

सुवासिनी : मैंने देखा कि सेनापति, आर्य्य चाणक्य को मारना ही चाहते हैं इसलिये मैंनें इन्हें रोका !

चंद्रगुप्त : गुरुदेव, प्रणाम ! चंद्रगुप्त क्षमा का भिखारी नहीं, न्याय करना चाहता है। बतलाये, पूरा विवरण सुनना चाहता हूँ, और पिताजी, आप शस्त्र रख दीजिये—सिंहरण ! (सिंहरण आगे बढ़ता है)

चाणक्य : (हँसकर) सम्राट् ! न्याय करना तो राजा का कर्त्तव्य हैं, परंतु यहाँ पिता और गुरु का संबंध है, कर सकोगे ?

चंद्रगुप्त : पिताजी !

मौर्य्य : हाँ चंद्रगुप्त, मैं इस उद्धत ब्राह्मण का—सब की अवज्ञा करनें वाले महत्त्वाकांक्षी का वध करना चाहता था। कर न सका, इसका दुःख है इस कुचक्रपूर्ण रहस्य का अंत न कर सका।

चंद्रगुप्त : पिताजी, राज-व्यवस्था आप जानते होंगे—वध के लिये प्राण दंड होता है, और आपने गुरुदेव का—इस आर्य्य-साम्राज्य के

निर्माणकर्ता ब्राह्मण का वध करने जाकर कितना गुरुतर अपराध किया है !

चाणक्य : किंतु सम्राट् वह वध हुआ नहीं ब्राह्मण जीवित है। अब यह उसकी इच्छा पर है कि वह व्यवहार के लिए न्यायाधिकरण से प्रार्थना करे या नहीं।

चंद्र-जननी : आर्य्य चाणक्य !

चाणक्य : ठहरो देवि ! (चंद्रगुप्त से) प्रसन्न हूँ वत्स ! यह मेरे अभिनय का दंड था। मैंने आज तक जो किया, वह न करना चाहिए था, उसी का महाशक्ति-केंद्र ने प्रायश्चित्त कराना चाहा। मैं विश्वस्त हूँ कि तुम अपना कर्त्तव्य कर लोगे। राजा न्याय कर सकता है—परंतु ब्राह्मण क्षमा कर सकता है !

राक्षस : (प्रवेश करके) आर्य्य चाणक्य ! आप महान् हैं, मैं आपका अभिनंदन करता हूँ ! न्यायाधिकरण से, अपने अपराध—विद्रोह का दंड पाकर सुखी रह सकूँगा। सम्राट् आपकी जय हो !

चाणक्य : सम्राट्, मुझे आज का अधिकार मिलेगा ?

चंद्रगुप्त : आज वही होगा गुरुदेव, जो आज्ञा होगी।

चाणक्य : मेरा किसी से द्वेष नहीं, केवल राक्षस के संबंध में अपने पर संदेह कर सकता था, आज उसका भी अंत हो सम्राट् सिल्यूक्स आते ही होंगे, उसके पहले ही हमें अपना सब विवाद मिटा देना चाहिये।

चंद्रगुप्त : जैसी आज्ञा।

चाणक्य : आर्य्य शकटार के भावी जामाता अमात्य राक्षस के लिये मैं अपना मंत्रित्व छोड़ता हूँ। राक्षस ! सुवासिनी को सुखी रखना।
(सुवासिनी और राक्षस चाणक्य को प्रणाम करते हैं)

मौर्य्य : और मेरा दंड ? आर्य्य चाणक्य, मैं क्षमा ग्रहण न करूँ तब आत्म-हत्या करूँगा !

चाणक्य : मौर्य्य ! तुम्हारा पुत्र आज आज आर्यावर्त्त का सम्राट् है—अब और कौन-सा सुख तुम देखना चाहते हो ? काषाय ग्रहण कर लो,

इसमें अपने अभिमान को मारने का तुम्हें अवसर मिलेगा। वत्स चंद्रगुप्त ! शस्त्र दो अमात्य राक्षस को ! (मौर्य्य शस्त्र फेंक देता है / चंद्रगुप्त शस्त्र देता है—राक्षस सविनय ग्रहण करता है)

सब : सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य्य की जय। (प्रतिहार का प्रवेश)

प्रतिहार : सम्राट् सिल्यूकस शिविर से निकल चुके हैं।

चाणक्य : उनकी अभ्यर्थना राज-मंदिर में होनी चाहिये, तपोवन में नहीं।

चंद्रगुप्त : आर्य्य, आप उस समय न उपस्थित रहेंगे।

चाणक्य : देखा जायगा। (सबका प्रस्थान)

१४

राजसभा/एक ओर से सपरिवार चंद्रगुप्त और दूसरी ओर से साइबर्टियस, मेगास्थनीज, एलिस और कार्नेलिया के साथ सिल्यूकस का प्रवेश/सब बैठते हैं)

चंद्रगुप्त : विजेता सिल्यूकस का मैं अभिनंदन करता हूं—स्वागत !

सिल्यूकस : सम्राट् चंद्रगुप्त ! आज मैं विजेता नहीं, विजित से अधिक भी नहीं—मैं संधि और सहायता के लिए आया हूँ।

चंद्रगुप्त : कुछ चिंता नहीं सम्राट्, हम लोग शस्त्र-विनिमय कर चुके, अब हृदय का विनिमय....

सिल्यूकस : हाँ, हाँ कहिये।

चंद्रगुप्त : राजकुमारी स्वागत ! मैं उस कृपा को नहीं भूल गया जो ग्रीक-शिविर में रहने के समय मुझे आपसे प्राप्त हुई थी।

सिल्यूकस : हाँ कार्नी—चंद्रगुप्त उसके लिए कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं।

कार्नेलिया : मैं आपको भारतवर्ष का सम्राट् देखकर कितनी प्रसन्न हूं।

चंद्रगुप्त : अनुगृहीत हुआ (सिल्यूकस से) औंटिगोनस से युद्ध होगा ! सम्राट् सिल्यूकस ! गज-सेना आपकी सहायता के लिए जायगी। हिरात में आपके जो प्रतिनिधि रहेंगे, उनसे समाचार मिलने पर और भी सहायता के लिए आर्य्यावर्त्त प्रस्तुत है।

सिल्यूकस : इसके लिए धन्यवाद देता हूं। सम्राट् चंद्रगुप्त आज से हमलोग दृढ़ मैत्री के बंधन में बँधे ! प्रत्येक का दुःख-सुख दोनों का होगा, किंतु एक अभिलाषा मन में रह जायगी।

चंद्रगुप्त : वह क्या ?

सिल्यूकस : उस बुद्धिसागर, आर्य्य-साम्राज्य के महामंत्री चाणक्य को देखने की बड़ी अभिलाषा थी ।

चंद्रगुप्त : उन्होंने विरक्त होकर, शांतिमय जीवन बिताने का निश्चय किया है (सहसा चाणक्य का प्रवेश/सब अभ्युत्थान देकर प्रणाम करते हैं)

सिल्यूकस : आर्य्य चाणक्य ! मैं आपका अभिनंदन करता हूं ।

चाणक्य : सुखी रहो सिल्यूकस, हम भारतीय ब्राह्मणों के पास सबकी कल्याण कामना के अतिरिक्त और है क्या---जिससे अभ्यर्थना करूँ ? मैं आज का दृश्य देखकर चिर-विश्राम के लिए संसार से अलग होना चाहता हूं ।

सिल्यूकस : और मैं संधि करके स्वदेश लौटना चाहता हूं । आपके आशीर्वाद की बड़ी अभिलाषा थी । संधि-पत्र····

चाणक्य : किंतु संधि-पत्र स्वार्थों से प्रबल नहीं होते, हस्ताक्षर तलवारों को रोकने में असमर्थ प्रमाणित होंगे । तुम दोनों ही सम्राट् हो शस्त्र-व्यवसायी हो, फिर भी संघर्ष हो जाना कोई आश्चर्य की बात न होगी अतएव दो बालुकापूर्ण कगारों के बीच में एक निर्मल स्रोत-स्विनी का रहना आवश्यक हैं ।

सिल्यूकस : सो कैसे ?

चाणक्य : ग्रीस की गौरव-लक्ष्मी कार्नेलिया को मैं भारत की कल्याणी बनाना चाहता हूं !--यही ब्राह्मण की प्रार्थना है ।

सिल्यूकस : मैं तो इससे प्रसन्न ही हूंगा, यदि····

चाणक्य : यदि का काम नही, मैं जानता हूं, इसमें दोनों प्रसन्न और सुखी होंगे ।

सिल्यूकस : (कार्नेलिया की ओर देखता है, वह सलज्ज सिर झुका लेती है)—तब आओ बेटी, आओ चंद्रगुप्त---(दोनों ही सिल्यूकस के पास आते हैं, सिल्यूकस उनका हाथ मिलाता है / फूलों की वर्षा और जय-ध्वनि)

चाणक्य : (मौर्य्य का हाथ पकड़कर) चलो, अब हम लोग चलें ।

यवनिका

●